

श्रीवास्तुदेवताभ्यो नमः

# वास्तुसारणी

3-4

( भाषा टीका सहिता )

लेखक

स्व० प० श्रीमातृकाप्रसाद पाण्डेय

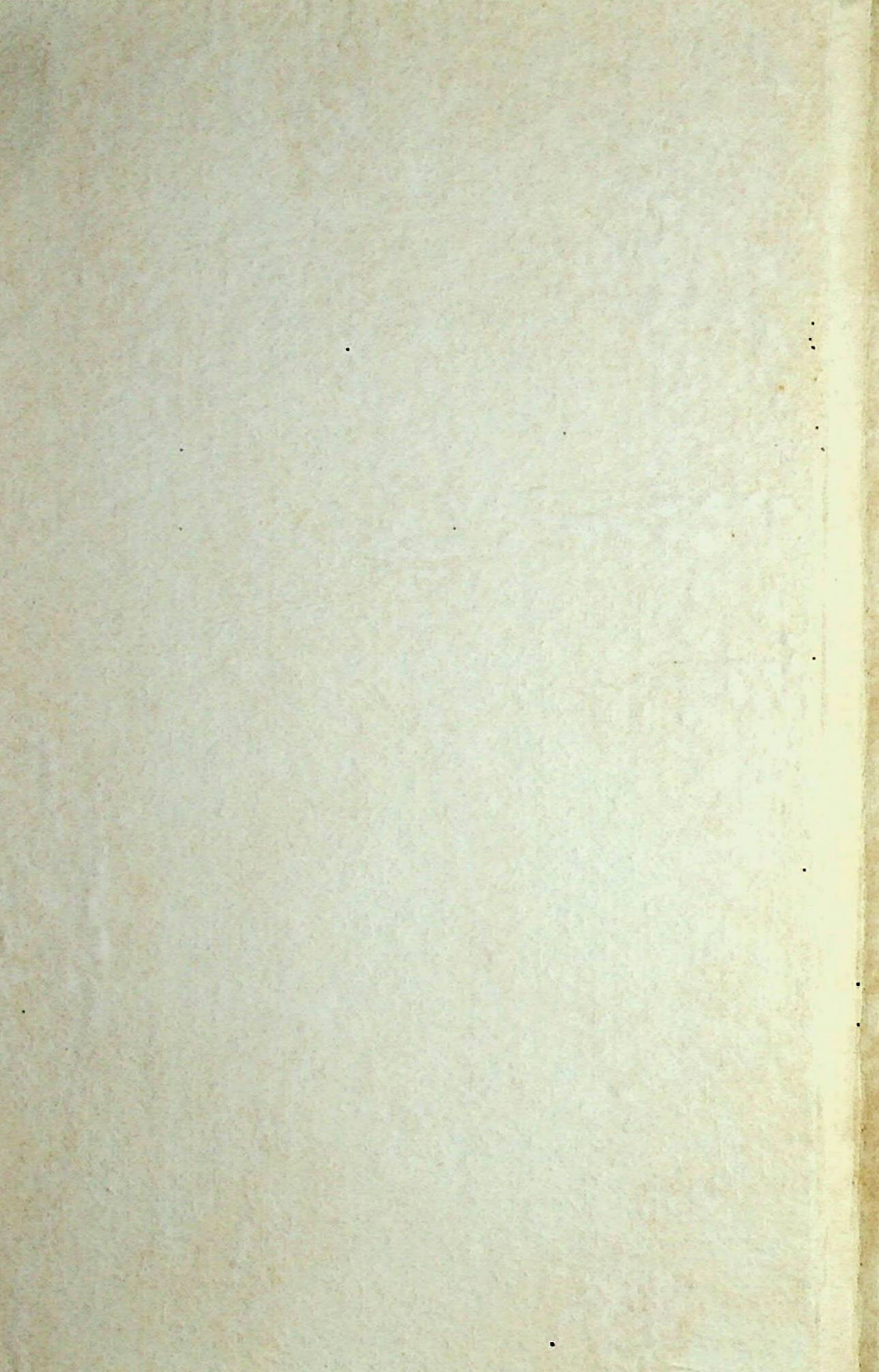
प्रकाशक।

मास्टर खेलाडीलाल संकटा प्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली वाराणसी-१















श्रीवास्तुदेवताभ्यो नमः

# वास्तुसारणी

---

मिरजापुरमण्डलान्तर्गताहीग्रामस्थशङ्करपाठशालाप्रधानाध्यापक

स्व० पं० श्रीमातृप्रसाद पाण्डेयविरचिता तत्कृत-

निधिप्रदाख्यसोदाहरणभाषाटीकासहिता ।

तदात्मजश्रीवालमुकुन्दपाण्डेयकृत-

टिप्पणीभिरलंकृता च ।

---

प्रकाशकः

मास्टर खेलाडीलाल संकटा प्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली वाराणसी-१

तृतीय संस्करणम् ]

१९८८ ई०

[ मूल्यम् २५.००

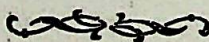
---

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन



वि०	पृ०	पं०	वि०	पृ०	पं०
द्वारविचारः	५३	१	कूपादिमुक्तिकाविचारः	१०९	१४
द्वारचक्रं तत्फलम्	५६	३	दीपद्वाराजलस्थाननिर्णयः	११०	१
राजगृहादिनिर्णयः	५७	१	तडागचक्रम्	११०	७
" " चक्रम्	५६		तडागमुहूर्तः	११०	२५
ब्राह्मणादिगृहनिर्णयः	६०	३	चापीमुहूर्तः	१११	१
" " चक्रम्	६०	१६	नेवारचक्रम्	१११	६
चरणीविचारः	६२	७	नेवारस्थापनमुहूर्तः	१११	१७
अश्वगृहाणानिर्माणम्	६२	१६	कूपादिजीर्णोद्धारमुहूर्तः	१११	२७
गजगृहनिर्माणम्	६३	१७	कूपादीनां संस्काररहित-		
इष्टिकानिर्माणदिकम्	६३	३०	जलमपेयम्	११२	१
गृहे ब्राह्मकाष्ठम्	६४	१०	जलाशयकरणे माहात्म्यम्	११२	१४
द्रुमच्छेदनमुहूर्तादिकम्	६७	८	वृक्षायुर्वेदाध्यायः	११३	७
वर्जितचित्राणि	६७	२५	वृक्षरोपणस्यावश्यकताकथनं	११३	८
पादपरोपणमुहूर्तादिकम्	६६	६	एकवृक्षाद्वितीयवृक्षं कति-		
मण्डलेशनानयनम्	७३	२	हस्तापरि रोपणीयम्	११४	८
अजिरानयनम्	७३	२१	वृक्षरोगकारणनिरूपणं	११४	२६
गृहस्नाचम्	७३	३०	वृक्षौषधीनिर्णयः	११५	६
गृहप्रवेशप्रकरणम्	७४	११	अफलितवृक्षोपायः	११५	२६
गृहप्रवेशसमयनिरूपणम्	७४	२५	फलितवृक्षात्पत्तिविधिः	११८	२६
वास्तुपूजासमयनिरूपणम्	७७	८	तिन्तिड्यादिवृक्षवपनविधिः	११७	१
वामरविज्ञानम्	७८	४	वृक्षरोपणनक्षत्राणि	११६	८
गृहप्रवेशे कुम्भचक्रम्	७८	२४	प्रासादप्रकरणम्	११६	१६
जीर्णगृहप्रवेशमुहूर्तः	७६	१७	देवालयनिर्माणस्यावश्य-		
गृहप्रवेशविधिः	८०	१	कताकथनम्	११९	१७
दकार्गलप्रकरणम्	८१	५	देवनिवासस्थाननिर्णयः	११९	२७
शिरासंज्ञा	८१	१६	देवालयभूमिनिर्णयः	१२०	३
कस्य वृक्षस्य काष्ठं काष्ठास्तु			देवालयादेःचतुःषष्टिपदवास्तुकरः	१२१	३
कतिहस्तादधो जलवान्यतृण-			देवमन्दिरनिर्माणनिर्णयः	१२२	१
भूमिः विशेषाज्जलज्ञानम्	८२	३	प्रासादस्यविंशतिनामकथनम्	१२३	१६
कूपचक्रम्	१०१	१	विंशतिप्रासादानालक्षणनिरूप.	१२३	२८
कूपमुहूर्तः	१०४	५	प्रतिष्ठाप्रकरणम्	१२७	१
कूपारम्भकुण्डलीफलम्	१०५	७	सर्वदेवप्रतिष्ठामुहूर्तः	१२७	२
कूपादिजलाशयदिक्षु निर्णयः	१०६	१५	अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणांसि-		
चन्द्रवासनिर्णयः	१०७	१	द्विपिण्डाद्विस्तारदीर्घहस्तादिकं च	१	
जलविचारः	१०७	११६	ग्रन्थकर्तृपरिचयः	२८	

इति ।





✽ श्रीहरिः ✽

## अथ वास्तुसारणीप्रारम्भः ।

भुजङ्गभूषं गिरिजां विनायकं हरिं रविं छत्रधरात्मजन्मना ।

मातृ प्रसादेनप्रणम्य रच्यते मुदे बुधानां किल वास्तुसारणी ॥१॥

भा० टी०--सर्प ही है भूषण जिसका ऐसे श्री १०८ शङ्करजी तथा पार्वती माई व श्री गणेशजी और श्रीविष्णु भगवान् तथा सूर्यनारायणजी को प्रणाम कर विद्वानों के हर्ष के लिये श्री ६ पूज्यपाद पं० श्री छत्रधर पाण्डेयजी का पुत्र ( मैं ) मातृ प्रसाद इस वास्तु सारणी को बनाता हूँ ॥ १ ॥

तत्रादौ नारायणोक्त ग्रामनिर्णयः-

नामर्चाद्द्विसुताङ्क दिग्भवगतो ग्रामः शुभो नान्यथा

तत्कोणोऽन्त्यभुवां शुभं निवसतां दोषाः परेषामलम् ।

कन्याकर्किधनुस्तुलाक्रियघटा कौर्प्यगडजौ याम्यतो

मध्येऽन्ये न वसन्त्यथेन्द्रककुभो वर्गाः स्युरोजस्विनः ॥ २ ॥

भा० टी०--नाम राशि से ग्राम राशि संख्या २, ५, ६, १०, ११, हो तो वह ग्राम वसने में शुभ होता है, इससे भिन्न अशुभ है, और ग्राम के कोण में अन्त्यज के वसने से शुभ है, तथा ब्राह्मणादिक का कोण में वसना अशुभ होता है। ग्राम के दक्षिण भाग में कन्या राशि वाले, नैऋत्य कोण में कर्क राशि, पश्चिम में धनुराशि, वायव्य कोण में तुला राशि, उत्तर में मेष राशि, ईशान कोण में कुम्भ राशि, पूर्व में वृश्चिक राशि, और अग्नि कोण में मीन राशि, तथा शेष ( वृष, मिथुन, सिंह, मकर ) राशि वाले ग्राम के मध्य में वास न करे । और अपने वर्ग से पांचवें वर्ग में परस्पर शत्रुता है, अवर्ग आदि आठो वर्ग क्रम से पूर्वादि दिशा में बली होते हैं जिस दिशा में जो बली

✽ १ ज्योतिर्निबन्धे--देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहाराके ।

नामराशेः प्रधानत्वं जन्मराशि न चिन्तयेत् ॥

तथा ललङ्कः--काकिण्यां वर्गशुद्धौ च दाने द्यूते ज्वरोदये ।

मन्त्रे पुनर्भूवरणो नासुराग्नेः प्रधानता ।

२ वास्तुशास्त्रे--स्वनामराशेर्यद्वाशिर्द्विगिराङ्केणदिगमितः ।

स ग्रामः शुभदः प्रोक्तस्त्वशुभः स्यात् ततोऽन्यथा ॥

३ रामः--गोमिहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये ग्रामस्य पूर्वकुम्भोऽलिभयाङ्गनाश्च ।

कर्को धनुस्तुलभमेपघटाश्च तद्वद् वर्गाः स्वपञ्चमपराः वसिनः स्युरेन्द्रयः ॥



है उस दिशा में उसको वास करना चाहिये। शत्रु वर्ग की दिशा में वास करने से कल्याण नहीं होता है ॥ २ ॥

उदाहरण—पूर्व दिशा में अवर्ग वाली है इससे अवर्ग वाले मनुष्य को पूर्व दिशा में वास करने से शुभ होता है और अवर्ग से पाँचवाँ वर्ग त वर्ग है उसका शत्रु है पश्चिम दिशा में वाली है अतः अवर्ग वाले को पश्चिम दिशा शत्रु दिशा होने से अशुभ है, इसी प्रकार सब में जाने।

नारायणोक्त काकिणीविचारः—

अष्टावप्रमुखाः स्वपञ्चमपरा द्विघ्नः स्ववर्गोन्ययुक्

तष्टः काकिणिका गजैर्मिथ इमा यस्याधिकः सोर्थदः ॥३॥

भा० टी०—गृह के बनाने वाले का जो वर्ग संख्या हो उसको दो से गुणा कर ग्राम के वर्ग संख्या को उसमें युक्त करके ८ का भाग देवे जो शेष बचे वह गृह बनाने वाले की काकिणी [ घन ] है इस प्रकार ग्राम के वर्ग संख्या को दो से गुणा करके उसमें नाम के वर्ग संख्या को युक्त करके ८ का भाग दे शेष ग्राम की काकिणी होगी दोनों में जिसकी काकिणी अधिक हो वह घन देने वाला होता है। इससे ग्राम की काकिणी अधिक होना शुभ होता है। यथा—किसी ग्राम में मकान बनाना हो या उस ग्राम में व्यापार करना हो तो काकिणी का विचार अवश्य कर लेना, इस चक्र में जहाँ “अ” लिखा है उससे अवर्ग “क” से कवर्ग, इत्यादि जाने जहाँ चक्र में ग्राम लिखा है उससे ग्राम के प्रथम अक्षर से प्रयोजन है जहाँ गृहेश नाम लिखा है वहाँ गृहेश के नाम के आदि वर्ण से प्रयोजन है। जहाँ “अ” कार आदि वर्ग लिखा है वहाँ ग्राम तथा गृहेश नाम दोनों के सामने “स्ववर्ग द्विगुणं कृत्वा” के अनुसार शेष लिखा है “यस्याधिकः सोर्थदः” इसके अनुसार ग्राम का अधिक शेष देखकर शुभ और जहाँ गृहेश के नाम में अधिक शेष आया है वहाँ अशुभ लिखा है ॥ ३ ॥

उदाहरण—‘गमनन्दन’ गृहेश का नाम है यह ‘सेयरी’ ग्राम में बसना चाहता है शवर्ग ग्राम का है और य वर्ग बसने वाले का है चक्र में श वर्ग और य वर्ग के सामने शुभ लिखा है इससे बसना शुभ है।

१—अ क च ट त प य श वर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् ।

सर्पासृगावीणा निजपञ्चमवैरिणामष्टौ । इति रामः ।

भा० टी०—आठ वर्ग होते हैं—अ वर्ग ( अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ अं आ ) क वर्ग ( क ख ग घ ङ ) च वर्ग ( च छ ज झ ञ ) ट वर्ग ( ट ठ ड ढ ण ) त वर्ग ( त थ द ध न ) प वर्ग ( प फ ब भ म ) य वर्ग ( य र ल व ) शवर्ग ( श ष स ह ) इन वर्गों का क्रम से गरुण, बिडाल, सिंह, कुत्ता, सर्प, मूस, मृग, तथा मेढा स्वामी हैं सब वर्गों के स्वामियों का अपने वर्ग से पाँचवाँ वर्ग शत्रु है—यथा गरुड सर्प से, बिल मूस से, सिंह मृग से, और कुत्ता मेढर से वैर है।



वास्तु सारण्या-

३

ग्राम नाम	अ. ३	अ. ४	अ. ५	अ. ६	अ. ७	अ. ८	अ. ९	अ. १०
गृहेश नाम	अ. ३	क. ५	च. ७	ट. १	त. ३	प. ५	य. ७	श. ९
शुभाशुभ	शुभ	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ	शुभ	अशु.	अशु.
ग्राम नाम	क. ५	क. ६	क. ७	क. ८	क. ९	क. १०	क. ११	क. १२
गृहेश नाम	अ. ४	क. ६	च. ८	ट. २	त. ४	प. ६	य. ८	श. १०
शुभाशुभ	शुभ	शुभ	अशु.	शुभ	अशु.	अशु.	अशु.	शुभ
ग्राम नाम	च. ७	च. ८	च. ९	च. १०	च. ११	च. १२	च. १३	च. १४
गृहेश नाम	अ. ५	क. ७	च. ९	ट. ३	त. ५	प. ७	य. ९	श. ११
शुभाशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशु.	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ
ग्राम नाम	ट. १	ट. २	ट. ३	ट. ४	ट. ५	ट. ६	ट. ७	ट. ८
गृहेश नाम	अ. ६	क. ८	च. १०	ट. ४	त. ६	प. ८	य. १०	श. १२
शुभाशुभ	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ
ग्राम नाम	त. ३	त. ४	त. ५	त. ६	त. ७	त. ८	त. ९	त. १०
गृहेश नाम	अ. ७	क. ९	च. ११	ट. ५	त. ७	प. ९	य. ११	श. १३
शुभाशुभ	अशु.	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशु.	अशु.	अशु.
ग्राम नाम	प. ५	प. ६	प. ७	प. ८	प. ९	प. १०	प. ११	प. १२
गृहेश नाम	अ. ८	क. १०	च. १२	ट. ६	त. ८	प. १०	य. १२	श. १४
शुभाशुभ	अशु.	शुभ	शुभ	शुभ	अशु.	शुभ	अशु.	अशु.
ग्राम नाम	य. ७	य. ८	य. ९	य. १०	य. ११	य. १२	य. १३	य. १४
गृहेश नाम	अ. १	क. ३	च. ५	ट. ७	त. ९	प. ११	य. १३	श. १५
शुभाशुभ	शुभ	शुभ	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ	शुभ	अशु.
ग्राम नाम	श. १	श. २	श. ३	श. ४	श. ५	श. ६	श. ७	श. ८
गृहेश नाम	अ. २	क. ४	च. ६	ट. ८	त. १०	प. १२	य. १४	श. १६
शुभाशुभ	अशु.	अशु.	अशु.	अशु.	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ



वसिष्ठोक्त दशाविचारः-

गजशरतु युगाश्वमहोगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात् ।  
 गृहपतेरविधा पुरदिग्मिता नवहता भवनस्यदशा भवेत् ॥४॥  
 अवर्गादिकवर्गाणां स्वराङ्काः कथिताः क्रमात् ।  
 गजेष्वतु युगाः सप्तभूमिरामयमाः बुधैः ॥ ५ ॥

भा० टी०--पूर्वादि दिशा का क्रम से ८।५।६।४।३।२।१।० स्वराङ्क है अर्थात् पूर्व का ८ अग्निकोण का ५ दक्षिण दिशा का ६ नैऋत्यकोण का ४ पश्चिम दिशा का ३ वायव्य कोण का २ उत्तर दिशा का १ और ईशानकोण का ० है । गृहेश का स्वरांक और गाँव का स्वरांक तथा दिशा का स्वरांक एकत्र जोड़ कर ६ का भाग देते शेष मकान की दशा होगी, गृहेश का तथा ग्राम का स्वरांक श्लोक ४ से जाने और अकारादि वर्ग का क्रम से ८।५।६।४।३।२।१।० स्वरांक है । अर्थात् अ वर्ग का ८ क वर्ग का ५ इत्यादि सब जाने ॥ ५ ॥

भगो विधुः कुजो राहुर्जीवस्त्वाकिर्हिमांशुजः ।

केतुः कविर्दशासौम्यखेचरस्य प्रशस्यते ॥ ६ ॥

भा० टी०--'गजशरतु' इस श्लोक के अनुसार यदि भाग देने से १ शेष बचे तो सूर्य की, २ बचे तो चन्द्रमा की, ३ बचे तो मंगल की, ४ बचे तो राहु की, ५ बचे तो गुरु की, ६ बचे तो शनि की, ७ बचे तो बुध की, ८ बचे तो केतु की, और ९ बचे तो शुक्र की दशा होती है । इस दशा में शुभ ग्रह की दशा शुभ फल देने वाली होती है ॥६॥

मातृप्रसोक्तदशाफलप्रकारः-

चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणां दशा सौम्यफलप्रदा ।

कुजसूर्याकिपातानां दशानेष्ट फलप्रदा ॥ ७ ॥

भा० टी०--चन्द्र बुध गुरु शुक्र की दशा शुभ फल देने वाली होती है, मंगल सूर्य, शनि, राहु तथा केतु की दशा शम फल देने वाली नहीं है, इससे अच्छी नहीं है ॥७॥

१ यदाष्टभक्ता सूर्येन्दु कुजज्ञशनिवाक्पतिः ।

राहुशुक्राद्विभौ पक्षौ वाराहादेन सम्मतम् ॥

भा० टी०--बहुत से परिचित जहाँ नव का भाग लिखा है वहाँ ८ का भाग देते हैं यह उन लोगों का भ्रम है, अष्ट का परिभाग ले तो एकादि शेष में क्रम से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि, गुरु, राहु, शुक्र की दशा होती है इस प्रकार को वाराहादि स्वीकार नहीं करते हैं इससे मानने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

तथा वास्तुप्रदीपे-

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो बह्व्याभिभूतो ज्वरपीडिताङ्गः ।

सौख्यान्यित्तो रोगयुतः सुखाढ्यो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ८

भा० टी०--सूर्य की दशा चित्त में उद्वेग करने वाली, चन्द्र की धन पूर्ण करी, मंगल की अग्निभयदा, राहु की ज्वर से पीडित शरीर करने वाली, बृहस्पति की सुखदा, शनि की रोगदा, बुध की सुखदा, केतु की दुःखदा, और शुक्र की दशा सम्पूर्ण सुख देती है ॥ ८ ॥

मातृप्रसादोक्त कस्मद्दशाविचारप्रकारः-

कूपाद् गेहात्तडागाच्च दशाचिन्त्या तथा पुरात् ।

गेहाच्च शुभदं स्थानं सर्वस्थानाच्छुभप्रदम् ॥ ९ ॥

भा० टी०--कूप से, पुराने गृह से, तडाग से, ग्राम से दशा विचारै, सर्व स्थानों से शुभ होने पर गृह से शुभ होने से सर्व स्थानों से वह जगह शुभ होता है ॥९॥



## दशाबोधक चक्राणि-

पूर्व दिशा

अग्नि कोण

पू.८	पू.८	पू.८	पू.८	पू.८	पू.८	पू.८	पू.८
अ८	श.	मं.	रा.	चं.	वृ.	के.	सू.
क५	म.	शु.	सू.	के.	चं.	वृ.	वु.
च६	रा.	सू.	चं.	शु.	मं.	श.	के.
ट४	चं.	के.	शु.	वु.	सू.	रा.	श.
त७	वृ.	चं.	मं.	सू.	रा.	वु.	शु.
प१	के.	वृ.	श.	रा.	वु.	सू.	मं.
य३	सू.	तु.	के.	श.	शु.	मं.	वृ.
श२	शु.	श.	तु.	वृ.	के.	चं.	रा.
अ८	क५	च६	ट४	त७	प१	य३	श२

प्रामाणाक्षर

गृहेश नामाक्षर

गृहेश नामाक्षर

दक्षिण दिशा

नैऋत्य कोण

द.६	द.६	द.६	द.६	द.६	द.६	द.६	द.६
अ८	रा.	सू.	चं.	शु.	मं.	श.	के.
क५	सू.	वु.	के.	श.	शु.	मं.	वृ.
च६	चं.	के.	शु.	वु.	सू.	रा.	श.
ट४	शु.	श.	वु.	वृ.	के.	चं.	रा.
त७	मं.	शु.	सू.	के.	चं.	वृ.	वु.
प१	श.	मं.	रा.	चं.	वृ.	के.	सू.
य३	के.	वृ.	श.	रा.	वु.	सू.	मं.
श२	वु.	रा.	वृ.	मं.	श.	शु.	चं.
अ८	क५	च६	ट४	त७	प१	य३	श२

प्रामाणाक्षर

गृहेश नामाक्षर

गृहेश नामाक्षर

नै.४	नै.४	नै.४	नै.४	नै.४	नै.४	नै.४	नै.४
अ८	चं.	के.	शु.	वु.	सू.	रा.	श.
क५	के.	वृ.	श.	रा.	वु.	सू.	मं.
च६	शु.	श.	वु.	वृ.	के.	चं.	रा.
ट४	वु.	रा.	वृ.	मं.	श.	शु.	चं.
त७	सू.	वु.	के.	श.	शु.	मं.	वृ.
प१	रा.	सू.	चं.	शु.	मं.	श.	के.
य३	श.	मं.	रा.	चं.	वृ.	के.	सू.
श२	वृ.	चं.	मं.	सू.	रा.	वु.	शु.
अ८	क५	च६	ट४	त७	प१	य३	श२



पश्चिम दिशा										वायव्य कोण									
अस नामाक्षर	प.७	प.७	प.७	प.७	प.७	प.७	प.७	प.७	प.७	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१	वा१
	अ८	वृ.	चं.	मं.	सू.	रा.	वृ.	शु.	के.	अ८	के.	वृ.	श	रा.	वृ.	सू.	मं	चं.	
	क५	चं.	के.	शु.	वृ.	सू.	रा.	श.	वृ.	क५	वृ.	चं.	मं.	सू.	रा.	वृ.	शु.	के.	
	च६	मं.	शु.	सू.	के.	चं.	वृ.	वृ.	श.	च६	श.	मं.	रा.	चं.	वृ.	के.	सू.	शु.	
	ट.४	सू.	वृ.	के.	श.	शु.	मं.	वृ.	रा.	ट.४	रा.	सू.	चं.	शु.	मं.	श.	के.	वृ.	
	त.७	रा.	सू.	चं.	शु.	मं.	श.	के.	वृ.	त.७	वृ.	रा.	वृ.	मं.	श.	शु.	चं.	सू.	
	प.१	वृ.	रा.	वृ.	मं.	श.	शु.	चं.	सू.	प.१	सू.	वृ.	के.	श.	शु.	मं.	वृ.	रा.	
	य.३	शु.	श.	वृ.	वृ.	के.	चं.	रा.	मं.	य.३	मं.	शु.	सू.	के.	चं.	वृ.	वृ.	श.	
	श२	के.	वृ.	श.	रा.	वृ.	सू.	मं.	चं.	श२	चं.	के.	शु.	वृ.	सू.	रा.	श.	वृ.	
	अ८ क५ च६ ट.४ त.७ प.१ य.३ श२										अ८ क५ च६ ट.४ त.७ प.१ य.३ श२								
गृहेश नामाक्षर										गृहेश नामाक्षर									



## दशा चक्र देखने का प्रकार:-

दशा विचारने का प्रकार यह है कि जिस जगह मकान बनाना होय वह जगह (मकान या गाँव या कूप या तडाग) के जिस दिशा में होय उसकी दिशा जो होय उस दिशा के चक्र में देखे चक्र के ऊपर दिशा का अक्षर लिखा है। बायें तरफ ग्राम के नाम के अक्षर का वर्ग और नीचे मकान बनाने वाले के नाम के अक्षर का वर्ग लिखा है चक्र में देखने से जिस जगह तीनों का एकता होय उस जगह कोष्ठ में जो ग्रह लिखा है उसकी दशा जानै ॥

उदाहरण—पाई के पूरा में पश्चिम दिशा में विचार किया जाता है और मकान बनाने वाले का नाम जगदम्बाप्रसाद है। पश्चिम दिशा के चक्र में देखा "प" कार ग्राम के नाम का आदि अक्षर है चक्रके बाईं तरफ "प" के सामने देखा और जगदम्बा प्रसाद का च वर्ग है इससे नीचे च के सामने देखा ऊपर पश्चिम दिशा का "प" लिखा है तीनों के सामने "बु" लिखा है इससे मालूम भया कि बुधरूपति क्री दशा है अतः श्रेष्ठ है मकान बनाने में शुभ फल होगा ॥

भूमिशोधनार्थं सूत्रनिर्याणम्-

कौशं सूत्रञ्च विप्रस्य मौञ्जन्तु चत्रियस्य च ।

कार्पासं तु भवेद् वैश्ये शुद्रस्य स्वर्णकल्पितम् ॥१०॥

भा० टी०—ब्राह्मण के लिये कुशाका सूत्र, चत्रिय के निमित्त मौंजका, वैश्य के हेतु कपास का, और शुद्र के वास्ते सोने का सूत्र चाहिये ॥ १० ॥

अथापरमपिज्ञानं कथयामि समासतः ।

षड् गुणी कृत सूत्रेण शोधयेद् धरणीतलम् ॥११॥

सुधृते समये तस्मिन् सूत्रं केनापि लङ्घितम् ।

तदस्थि तत्र जानीयात् पुरुषस्य प्रमाणतः ॥ १२ ॥

अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशि शल्यं समादिशेत् ।

तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः ॥ १३ ॥

सूत्रिते ? समयेयत्र श्वा सूत्रस्योपरिसंस्थितः ।

तदस्थि तत्र जानीयात् षष्ट्यङ्गुलमित् चित्तौ ॥१४॥

उन्मादे चागते ? तस्मिन् समये यत्र संस्थितः ।

तदास्थि तत्र जानीयाद्द्वस्तद्वयमित् चित्तौ ॥१५॥

सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुम्भेऽथवा यदि ।

आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा ॥ १६ ॥



भा० टी०—मैं संक्षेपतः अन्य विचार कहता हूँ । षड्गुणसूत्र से भूमि शोचै, संशो-  
धन के समय उस सूत्रको कोई लांच जाय तो वहाँ उसी जाति याने मनुष्य पशु आदि  
का शल्य (हड्डी) ३॥ हाथ नीचे जाने । और जिस दिशा में अभ्यक्त देख  
पड़े उसी जाति की हड्डी ७० अंगुल नीचे जाने, और यदि कुता सूत्रपर आजाय तो  
उस जगह ६० अंगुल के नीचे कुत्ते की हड्डी कहे, यदि कोई उन्मादी मनुष्य आजाय  
तो दो हाथ नीचे उन्मादी की हड्डी कहे, जहाँ पर उन्मादी आया होय वहाँ पर जो सूत्र  
भग्न होजाय वा कुंभ (घड़ा) फूटजाय तो स्त्री पुरुष दोनों की मृत्यु होती है ॥११-१६॥

शल्यविचारमार्तण्डे—

‘सद्यप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम—

श्चेत्तद्दिग्गतमादिशेत्तु हपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः ॥ १७ ॥

भा० टी०—यदि शल्य जानने के लिये कोई प्रश्न करे और उसके मुख से  
“अ” प्रथम अक्षर निकलै तो पूर्वभाग में, ककार का उच्चारण हो तो अग्निकोण  
में, च का उच्चारण हो तो दक्षिण दिशा में, ट का उच्चारण हो तो नैऋत्यकोण में, त का  
उच्चारण हो तो पश्चिम में, प का उच्चारण हो तो वायव्यकोण में, य का उच्चारण हो तो उत्तर  
दिशा में, श का उच्चारण हो तो ईशान कोण में तथा ‘ह प य’ के उच्चारण से मध्य भाग  
में शल्य कहे । अन्य अक्षरों के उच्चारण से शल्य का अभाव जानै ॥ १७ ॥

१ स्मृत्येष्टदेवतां प्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम् ।

गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचारयेत् ॥ १ ॥

पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।

सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥ २ ॥

आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये ।

राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥ ३ ॥

याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटि संस्थितम् ।

नरशल्यं गृहेगंस्य मरणं चिररोगतः ॥ ४ ॥

नैऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले ।

शुनोऽस्थि जायते तत्र बालानां जनयेन्मृतिम् ॥ ५ ॥

तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते ।

सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥ ६ ॥

वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुपांगारश्चतुःकरे ।

कुर्वन्ति मित्रमाशं च दुःस्वप्नदर्शनं तथा ॥ ७ ॥

उर्वाच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः ।

तच्छीघ्रं निधनस्याप कुबेरसदृशस्य हि ॥ ८ ॥

ईशायां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः ।

तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ ९ ॥

हयपा मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेद्धधः ।

नृकपालमथो भस्मलोहं तत्कुलनाशकृत् ॥ १० ॥



विभाकरोक्तशल्योद्धारप्रकारः—

शल्यमस्ति न वा प्रश्ने स्थापयेच्छोभनं घटम् ।  
 घृतसिद्धिश्च मन्त्रैश्च स्वाहान्त्यैः प्रणवादिकैः ॥ १८ ॥  
 नवकोष्ठेषु चक्रेषु पूर्वादौ वर्णमालिखेत् ।  
 व क च त ए ह श पा यकारं मध्यकोष्ठके ॥ १९ ॥  
 ब्राह्मणक्षत्रिविद्विशूद्रा भवेयुः प्रश्नकारकाः ।  
 तौश्च पुष्पनदीदेवफलानां नाम संवदेत् ॥ २० ॥  
 एवं नामादिवर्णेषु यदि कोष्ठेषु दृश्यते ।  
 तिष्ठेच्छल्यं तदा वाच्यं नास्ति शल्यं तदन्यथा ॥ २१ ॥  
 वकारं सार्धहस्ते तु पूर्वं पूर्वनिवासिनाम् ।  
 दृष्ट्वा ककारमान्येयां कटिमात्रेण भूतले ॥ २२ ॥  
 खरशल्यं वदेद् धीमान् दण्डनीयो भवेद् गृही ।  
 चेद् याम्ये कपिशल्यं तु कटिमात्रेण भूतले ॥ २३ ॥  
 मरणं गृहनाथस्य चकाराच्च वदेत्सुधीः ।  
 शुनोः शल्यं च नैर्ऋत्यां तकारो यदि दृश्यते ॥ २४ ॥  
 सर्वं च भयमाप्नोति गृही सार्धैकहस्तके ।  
 एकाराच्च शिशोः शल्यं हस्तसार्धैकभूतले ॥ २५ ॥  
 गृहनाथः प्रवासी स्याच्छैलागारे च पश्चिमे ।  
 पुरुषस्य वदेच्छल्यं हकारो यदि दृश्यते ॥ २६ ॥

शल्य ( हड्डी ) निकालने के समय गृहेश ब्रह्मण द्वारा " ओं धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा रक्षामि " इस मन्त्र को तीन सहस्र ३००० बार जप कराके प्रश्नकर्ता अपने दृष्टदेव का स्मरण कर हाथ से भूमि का स्पर्श करता हुआ गृह भूमि के शुभाशुभ के निमित्त प्रश्न करे । प्रश्न के समय ब्राह्मण पुष्प, क्षत्रिय नदी, वैश्य देवता और शूद्र फल का नाम कहे । बाद पुष्पादिकों के आद्य अक्षर से शल्य कहना चाहिये, यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'अ' हो तो पूर्वदिशा में बैठ हाथ के नीचे मनुष्य की हड्डी जाने इसका फल है कि गृह बनाने में मनुष्य की मृत्यु होती है इत्यादि सब स्पष्ट है ।



विपत्तिर्गृहनाथस्य वायौ हस्तचतुष्टये ।  
 शल्यं विप्रस्य कौवेर्यां शकारो यदि दृश्यते ॥ २७ ॥  
 कटिमात्रे स्थितं नित्यं दरिद्रो गृहनाशकः ।  
 ऋक्षशल्यं कटिमात्रे पकारः सम्भवेद् यदि ॥ २८ ॥  
 गृहनाथः क्षयं याति गोवत्सादिक्षयो भवेत् ।  
 लौहभस्मकपालास्थि कटिमात्रे स्थितानि च ॥ २९ ॥  
 गृहमध्ये यकारश्च गृहिणश्च कुलक्षयः ।  
 आदौ तु प्रणवं दत्त्वा धरणीबीजमंत्रतः ॥ ३० ॥  
 विधारिणीकरणभूत्यै नमः स्वाहा ततः परम् ।  
 लोकपालास्तु सम्पूज्य खनकानां शिखां सुधीः ॥ ३१ ॥  
 मन्त्रेणानेन वधनीयाच्छल्यं सन्तोलयेत्ततः ॥ ३२ ॥

भा० टी०—यदि प्रश्नकर्ता शल्य ( हड्डी ) है या नहीं है ? ऐसा प्रश्न करे तो उस प्रश्न में घृतसिद्धि स्वाहान्त्य ॐकार युक्त घट को स्थापित करे, फिर कोष्ठ के चक्र में पूर्वादि में व, क, च, त, ए, ह, श, प, यह अक्षर और मध्य कोष्ठ में 'य' लिखे भूमि का मन्त्र तीन हजार जप कराने के बाद प्रश्न करे । प्रश्न के समय ब्राह्मण पुष्प, क्षत्रिय नदी, वैश्य देवता, शूद्र फल का नाम कहे । पुष्पादि के नाम का आदि वर्ण यदि कोष्ठ में देख पड़े तो कहे शल्य है, न देख पड़े तो शल्य नहीं है । 'व' देख पड़े तो पूर्व दिशा में मनुष्य का शल्य डेढ़ हाथ पर जाने, 'क' देख पड़े तो अग्निकोण में कमरमात्र के नीचे गद्गहा का शल्य है, मनुष्य को राजदण्ड होगा ऐसा फल है । 'च' देख पड़े तो दक्षिण दिशा में कमरमात्र पर वानर का शल्य है । पण्डित गृहेश का मृत्यु फल कहे, 'त' देख पड़े तो नैऋत्य कोण में १॥ हाथ के नीचे कुत्ते की हड्डी कहे इसमें बालमरण होता है । 'ए' कार यदि कोष्ठ में देख पड़े तो पश्चिम में बालक की हड्डी १॥ हाथ के नीचे जाने, इसमें गृह स्वामी पहाड़वाले परदेश में रहता है, 'ह' कार जा देख पड़े तो वायव्य कोण में ४ हाथ के नीचे मनुष्यशल्य कहे, इसमें गृहस्वामी की मृत्यु होती है, 'श' यदि देख पड़े तो उत्तर दिशा में ब्राह्मण की हड्डी कमर मात्र के नीचे जाने, इसमें दग्ध गृहका नाश होता है 'प' देख पड़े तो ईशान कोण में वानर की हड्डी कटिमात्र के नीचे जाने, इसमें गृहेश तथा गाय बैल का नाश होता है, 'य' देख पड़े तो मध्य में लोह की राख और कपाल की हड्डी कटिमात्र के नीचे कहे, इस गृह में स्वामी का नाश होता है "ॐ धरणी विधारिणी भूत्यै नमः स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ कर लोकपाल, आचार्य तथा खननेवालों का पूजन करके प्रश्न करे । शल्योद्धार का यह प्रकार और मार्तण्ड के प्रकार से किसी २ स्थल में भिन्नता है—दोनों के विचार एकत्र होने पर



'अ, व' के उच्चारण से पूर्व में, 'क' से अग्निकोण में, 'च' से दक्षिण में, 'ट, त' से नैऋत्य में, 'त, ए' से पश्चिम में 'प, ह' से वायव्य में, 'य, श' से उत्तर में 'प, श' से ईशान कोण में और 'ह, प, य' से मध्य में हड्डी जाने ( 'प' से तीन जगह वायव्य, ईशान, मध्यमें, 'त' से नैऋत्य, पश्चिममें, 'प' से उत्तर, मध्यमें, 'ह' से वायव्य और मध्यमें भी जाने)

नारायणोक्तभूमेर्वर्णरसगन्धाश्च-

श्वेता रक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुःकटुस्तिक्तकाः ।

काषायाघृतशोणितान्नमदिरागन्धाः शुभा विप्रतः ॥३३॥

भा०-टी०-श्वेत वर्ण भूमि ब्राह्मण के, रक्त वर्ण क्षत्रिय के, पात वर्ण वैश्य के और कृष्ण वर्ण की भूमि शूद्र के बसने योग्य है । इसी प्रकार मधुर स्वादवाली भूमि ब्राह्मण को, कटु, अम ( मिचं के ) स्वादवाली क्षत्रिय को, तिक्त ( नीम ) के स्वादवाली वैश्य को, कषाय ( अम्ल ) के स्वादवाली शूद्र का शुभ होती है । उसी तरह घृत तुल्य सुगन्धवाली भूमि ब्राह्मण के, रक्त सुगन्धवाली क्षत्रिय के, अन्न के समान सुगन्धवाली वैश्य के और मदिरा के सदृश सुगन्धवाली भूमि शूद्र के बसने योग्य है ॥३३॥

वर्णपरत्वेन भूमेर्निग्नत्वं मुहूर्तमार्तण्डे-

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद् विप्रादिकोऽग्र्याऽखिले ।

नान्येषां नियमोऽत्र यत्र निखिलाः कुर्युर्ग्रहं हृत्स्थिरम् ॥३४॥

१ शुक्ला मृत्स्ना तु या भूमिः ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता ।

क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च इति द्वैश्यां उदाहृता ॥ १ ॥

कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता ॥ २ ॥

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्वाच्छराकुला ।

कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥ ३ ॥

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत् ।

धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता स्मृता ॥ ४ ॥

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी रक्तगन्धा तु क्षत्रिया ।

मधुगन्धा भवेद् वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका ॥ ५ ॥

अम्ला भूमिर्भवेद् वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता ।

मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता ॥ ६ ॥

श्वेता यस्ता द्विलेन्नाणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् ।

विद्यां पीता च शूद्राणां कृष्णाऽन्येषां विमिश्रिता ॥७॥ इति कल्पद्रुमे ।

२ शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्रोमुखदायिनी ॥

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा ॥ १ ॥

मृत्पुष्पकोकप्रदा नित्यमाग्नेयी दक्षिणप्लवा ॥

गृहक्षयकरी सा च भूमिर्था निर्कृतिप्लवा ॥ २ ॥

धनहानिकरी चैव कीर्तिदा वरुणप्लवा ॥

वायुप्लवा तथा भूमिर्निर्गन्धसुदुर्बेगकारिणी ॥ ३ ॥



भा० टी०—उत्तर पञ्च ( कुकी ) भूमि में ब्राह्मण, पूर्वपञ्च पृथ्वी में क्षत्रिय, दक्षिणपञ्च पृथिवी में वैश्य तथा पश्चिमपञ्च भूमि में शूद्र गृह बनवावै, अथवा ब्राह्मण उत्तर आदि चारों दिशा में कुकी भूमि में गृह बनवावै, अन्य वर्णों का नियम नहीं है, अथवा जिस स्थान में हृदय प्रसन्न हो उस स्थान में सब वर्ण घर बनवावै तो शुभ है ॥ ३४ ॥

### भूमेलर्चणानि भुजबलभीमे—

तत्र गजपृष्ठलक्षणम्

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैऋत्ये वायुकोणके ।

एभिरुच्चो भवेद्भूमौ गजपृष्ठं विधीयते ॥ ३५ ॥

गजपृष्ठे भवेद्वासः सलक्ष्मीधनपूरितः

आयुर्वृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

भा० टी०—जिस जगह की भूमि दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम और वायव्य तरफ ऊँची होय तो उस को गजपृष्ठ कहते हैं। जो गजपृष्ठ भूमि में वास करे तो लक्ष्मी धन से पूरित होता है, उसकी आयुवृद्धि होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कूर्मपृष्ठलक्षणम् फलञ्च—

मध्येऽत्युच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम् ।

कूर्मपृष्ठं भवेद्भूमिस्तत्र वासो विधीयते ॥ ३७ ॥

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः ।

धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम् ॥ ३८ ॥

भा० टी०—जहाँ भूमि बीच में ऊँची होय और चारों तरफ नीची होय उसको कूर्मपृष्ठ कहना चाहिये। वहाँ वास करने की विधि है। कूर्मपृष्ठ भूमि पर बसने से नित्य उत्सव, सुख, तथा विपुल धन धान्य निश्चय होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

दैत्यपृष्ठभूमिलक्षणं तत्फलञ्च —

पूर्वाग्निशम्भुकोणे तु उन्नतिश्च यदा भवेत् ।

पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठो विधीयते ॥ ३९ ॥

दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे ।

धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः ॥ ४० ॥

भा० टी०—पूर्वदिशा में अग्निकोण में और ईशान में यदि भूमि ऊँची होय और पश्चिम में नीची हो तो उसको दैत्यपृष्ठ कहना चाहिये, दैत्यपृष्ठ भूमि पर वास करने से लक्ष्मी घरमें नहीं रहती और धन पुत्र तथा पशुओं की निश्चय हानि होती है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ ४० ॥



## नागपृष्ठभूमिलक्षणम्—

पूर्वपश्चिमयोर्दोर्ध्वं दक्षिणोत्तर उच्चता ।

नागपृष्ठो विजानीयात्कतुरुच्चाटनं भवेत् ॥ ४१ ॥

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः ।

पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥ ४२ ॥

भा० टी०—पूर्व पश्चिम दोर्ध्व और दक्षिण उत्तर उच्च ऐसी कर्ता का उच्चाटन करनेवाली भूमि को नागपृष्ठ कहना चाहिये । नागपृष्ठ पर जो वास करे तो निश्चय मृत्यु, स्त्री पुत्र की हानि तथा पद पद पर शत्रुओं की वृद्धि होती है । इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

## आयतादिभूमिफलमाह भोजराजः—

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रो धनागमः ।

वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत् ॥ ४३ ॥

चक्रे दरिद्रमित्याह विषमे शोकलक्षणम् ।

राजभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः ॥ ४४ ॥

दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयम् ।

गोव्याघ्रबन्धनं पीडा धनुःक्षेत्रे भयं महत् ॥ ४५ ॥

भा० टी०—'आयत' लक्षणवाली भूमिपर वास करने से सर्वासिद्धि प्राप्त होती है। 'चतुरस्र' में धनका आगम, 'वृत्त' में बुद्धिवृद्धि, 'भद्र' में शुभ, 'चक्र' में दरिद्रता, 'विषम' में शोक, 'त्रिकोण' में राजभय, 'शकट' में धनका नाश, 'दंड' में पशुक्षय 'शूर्प' में गोवंश का क्षय और 'धनुष' के समान भूमि में गो व्याघ्रका बन्धन, पीडा तथा भारी भय होता है। भूमि का नाम उपलक्षणमात्र है वह फल आयत आदि के सदृश गृह का भी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

## जोवितादिभूमिज्ञानं रुद्रयामले—

व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम् ।

चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रैश्च भाजितम् ॥ ४६ ॥

१—जित क्षेत्र के ग्रामने-ग्रामने की पृथ्वी भुजा तुल्य होय, चारो कोण सम कोण हो उसको आयत कहते हैं

२—जिसमें चौड़ाई लंबाई बराबर हो, वह चतुरस्र कहलाती है ।



एकेन जीविताभूमिर्द्वाभ्यां च समता भवेत् ।

शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ४७ ॥

भा० टी०—दीर्घ विस्तार को एक में जोड़कर कर गौं के नामके अक्षर की संख्या को मिलावै और फिर उसको चार से गुणा करके उसमें मकान बनानेवाले का नाम जोड़े तब उसमें ३ का भाग दे एक शेष बचे तो जीवित भूमि, दो शेष बचे तो समान फल देने वाली शून्य बचे तो शून्य फल देनेवाली भूमि है । ऐसा रुद्रयामल में कहा है ॥४६॥४७॥

उदाहरण—विस्तार २६ दीर्घ ३३ इसको एक में जोड़े तो ६२ हुये । इसमें पौंड्र के गौं के अक्षर की संख्या ५ मिलाया तो ६७ हुआ इसको ४ से गुणा तो २६८ हुए । इसमें गृहनिर्माणकर्ता "जगदम्बा" प्रसाद की संख्या ७ मिलाया तो २७५ हुए इसमें ३ का भाग देने से शेष २ बचे इसका फल सम है ।

प्रकारान्तरेण तत्रैव—

ग्रामाक्षरं चतुर्गुण्यं नामाक्षरसमन्वितम् ।

शिवनेत्रैर्हरेद्भागं शेषाङ्के फलमादिशेत् ॥४८॥

एकेन जीविता भूमिर्द्वातीये समता फलम् ।

तृतीयेन मृता भूमिरित्युक्तं रुद्रयामले ॥४९॥

भा० टी०—ग्राम के अक्षर को ४ से गुणा कर उसमें नामका अक्षर जोड़ै । फिर ३ का भाग देने से जो शेष बचे उससे फल जाने । यदि १ शेष बचे तो जीती भूमि २, बचे तो समफल देनेवाली ३ बचे तो मृतक भूमि जाने । ऐसा रुद्रयामल में लिखा है ॥४८॥४९॥\*

पुनः तत्रैव—

ग्रामनामदिशां वर्गमेकीकृत्य त्रिभिर्भजेत् ।

एकेन जीविता भूमिर्द्वातीयेन मृता भवेत्

शून्ये शून्यं विजानीयादित्युक्तं रुद्रयामले ॥५०॥

भा० टी०—ग्राम का नाम और दिशा का वर्ग एकत्र करके तीन से भाग लेवे । शेष १ बचे तो जीवित, २ बचे तो मृतक, ३ शून्य बचे तो शून्य फल होता है । ऐसा रुद्रयामल में लिखा है ॥ ५० ॥

पुनरपि तत्रैव—

महिमण्डलपद्मघ्नं भानुसंख्यासमन्वितम् । (?)

रामभिश्च हरेद्भागं शेषं भूमिफलं वदेत् ॥५१॥

\* सय श्लोकों का उदाहरण देने से प्रसक्त बृहत् हो जायगी अतएव सब जगह उदाहरण नहीं दिया जाता । भाषा टीका को अच्छी तरह मनन करके उदाहरण जाने ।



एकेन जीविता पृथ्वी द्वितीये समता भवेत् ।

तृतीये च मृतां पश्येदित्युक्तं रुद्रयामले ॥५२॥

भा० टी०—पृथ्वी के मण्डल (घेग) को ८ से गुणा करके उसमें ७ मिलावे (?) । फिर उसमें ३ का भाग देवे तब फल कहै । एक शेष बचे तो जीवित, २ शेष बचे तो समफल है, ३ शेष बचे तो पृथ्वी को मृतक जाने यह ब्रह्मयामल में कहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

आदियामले च—

भूम्यक्षरं चतुर्गुणं तिथिवारं च मिश्रितम् ।

त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत् ॥ ५३ ॥

एकेन जीविता भूमिः द्विशेषे भूः समावती ।

त्रिशेषे मृतभूमिः स्यादित्युक्तं चादियामले ॥ ५४ ॥

भा० टी०—भूमि के अक्षर को चार से गुणा करके तिथिवार को उसमें मिलावे । फिर उसमें ३ से भाग देवे जो शेष बचे उससे फल कहै । १ शेष बचे तो जीवित भूमि, २ शेष बचे तो समफलदात्री, ३ शेष बचे तो मृतक (दुष्टफलदात्री) भूमि जाने, ऐसा आदियामल में कहा है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

पुनरपि वास्तुशास्त्रे—

ग्रामस्वरं तत्र दिशाप्रमाणं नामाक्षरं तत्र ग्रहैः समन्वितम् ।

शैलेः प्रगुणं विभजेद्युगैश्च सौख्यं च सुप्तं च मृतं च शून्यम् ५५

भा० टी०—ग्राम के स्वर को दिशा के प्रमाण के और नामाक्षर को एकत्र करके उसमें ६ युक्त करै । फिर उसको ७ से गुणा करके उसमें ४ का भाग देय । शेष १ बचे तो सौख्य, २ बचे तो सुप्त, ३ बचे तो मृतक, ४ शेष बचे तो शून्य जाने ॥ ५५ ॥

प्रकारान्तरेण तत्रैव—

कर्तृग्रामदिशांश्चैव स्वरयुक्तं तु कारयेत् ।

बह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेत् ॥ ५६ ॥

एके जागर्ति भूमिश्च द्वितीये समता भवेत् ।

तृतीये राक्षसी चैव मृत्युस्तत्र न संशयः ॥ ५७ ॥

भा० टी०—कर्ता ग्राम और दिशा के स्वर को एकत्र करके उसमें ३ का भाग देय जो शेष बचे उससे फल जाने । १ शेष बचे तो पृथ्वी जागती है, २ शेष बचे तो समता कहै, ३ शेष बचे तो राक्षसी कहै, यह मृत्यु देनेवाली है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥



वास्तुशास्त्रेऽपि—

यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति सस्यं हर्षात् प्रवर्द्धते ।

सा भूमिर्जीविता वाच्या मृता चातोन्त्यथा भवेत् ॥५८॥

भा० टी०—जिस जगह पृथ्वी पर वृक्ष हों और घास हर्ष से बढ़े, उस भूमि को जीवित कहना, अन्यथा मृतक भूमि कहना, चाहिए ॥ ५८ ॥

वशिष्टः—

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि ।

तस्यां कार्यं ग्रहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥ ५९ ॥

भा० टी०—जिस जगह मन का तथा नेत्र का सन्तोष होय, इसी जगह सब कोई मकान बनावे । यह गर्गादि सब आचार्यों का मत है ॥ ५९ ॥

प्रकारान्तरेण ग्रामवासफलम्—

मस्तके पञ्च लाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः ।

कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं षट्पादे स्त्रीदरिद्रता ॥ ६० ॥

पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः ।

गुह्ये चैकं भयं पीडा हस्ते चैकं तु क्रन्दनम् ॥ ६१ ॥

वामे चैकं करे भेदो ग्रामचक्रं नराकृति ।

गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतः सदा ॥ ६२ ॥

भा० टी०—ग्राम का चक्र मनुष्य के आकार का बनावे । गाँव के नक्षत्र से जन्म के नक्षत्र तक गिने । ५ नक्षत्र मस्तक में लाभ के लिये, और ३ नक्षत्र मुख में धन क्षय करनेवाला है । कुक्षि में ५ नक्षत्र धन धान्य देनेवाला है, पाद में ६ नक्षत्र दगिद्रा स्त्री का फल देनेवाला है, पीठ में १ पैर का हानि करनेवाला, नाभि में ४ सम्पत्ति देनेवाला, मजस्थान में १ भय पीडा देनेवाला और बायें हाथ में १ भेदफल देनेवाला है ॥६०॥६१॥६२॥

रात्रौ मांसादिसंयुक्तं भक्तं भूमौ निधाय च ।

कियद्दूरे ततो गत्वा तच्छब्दं चिन्तयेत्सुधीः ॥ ६३ ॥

चेन्नैर्ऋत्यां शिवा रौति तदा वासं न कारयेत् ।

दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे भयं महत् ॥६४॥

पूर्वे तूच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिः सह ।



ईशाने मरणं प्रोक्तं चोत्तरे कुरु सर्वतः ॥ ६५ ॥

वासं वायव्यकोणेषु भयं किञ्चित्प्रजायते ।

पश्चिमे वासकरणादानन्दः परिकीर्तितः ॥ ६६ ॥

अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत् ॥ ६७ ॥

भा० टी०-रात्रि-में मांस मिला हुआ भात ग्राम के बाहर रख कर कुछ दूर जाकर सियार के शब्द का विचार करे। नैऋत्य कोण में सियार रोवे तो उस ग्राम में वासन करे। दक्षिण में रोवे तो कल्याण होय, अग्निकोण में रोवे तो महाभय होय, पूर्व में रोवे तो उच्चाटन होय, शत्रु के साथ कलह होय, ईशान कोण में रोने से मरण होय, उत्तर रोने से कल्याण होय, वायव्य कोण में रोने से कुछ भय होय, पश्चिम में रोवे तो आनन्द होय, आठों दिशा में रोवे तो उस ग्राम में न वसे ॥६३॥६४॥६५॥६६॥६७॥

नारायणोक्तस्थलशुभाशुभविचारः-

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्

प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् ।

ज्ञात्वैवं निखनेद् गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तस्तरो-

यावद् वा पुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥ ६८ ॥

भा० टी०-जिस भूमि में मकान बनावे वहाँ एक हाथ का चतुरस्र गर्त (गड़हा) खने। उसको सूर्य के अर्द्धास्त के समय में जल से पूर्ण करे। यदि जल प्रभाव तक रहै तो शुभ होय, और न रहै तो मध्यम है। फट जाय तो अशुभ होय। ऐसे भूमि की परीक्षा करके मकान से अधिक भूमि खोदे वा जल देख पड़े वहाँ तक खोदे वा मिट्टी के दूसरे तह तक खोदे वा पुरुष के बराबर खोदे और उसको बन्दर के शिर के बराबरवाले पत्थर के ढोके से भरे ॥ ६८ ॥

प्रकारान्तरेण वास्तुराजवल्लभे-

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम् ।

क्षेत्राधिपं चाष्टदिगीशदेवान्सुपुष्पधूपैः बलिभिः सुखाय ॥६९॥

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा

हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्द्धने ।

तत्कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्य पुनः

पादानोनविहोनकेऽथ निधूते मध्याधमेष्टाम्बुभिः ॥ ७० ॥



भा० टी०—जिस भूमि की परीक्षा करनी हो उस भूमि में गणेशजी की श्रीपार्वती के सहित क्षेत्रपाल तथा अष्टदिशाओं के स्वामी और देवगणों की अपने सुख के लिये सुन्दर पुष्प धूप बलि वगैरह से पूजा करे । एक हाथ जम्वा एकही हाथ चौड़ा उतनाही गहरा एक गतं ( गड्ढा ) खने, और उसी मिट्टी से उसको पाटे । यदि मिट्टी कम हो जाय तो अशुभ, बराबर हो तो समफल, मिट्टी बढ़ जायतो लाभ होता है । अथवा उस गढ़से मिट्टी निकाल कर उसको जलसे पूर्ण करे । फिर सौ कदम जाकर लौट आवे यदि जल पूर्ण रहेतो शुभ, आधा रहे तो मध्यम, कुछ न रहे तो अशुभ जानै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

### वास्तुप्रदीपे जलात्फलं—

कर्तास्वहस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरयेत्तत् ।  
वसेत्सुखार्थी परिपूरितं स्याच्छुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः ॥ ७१ ॥  
स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्यादक्षिणावर्तजलेन सौख्यम्  
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः ॥ ७२ ॥

भा० टी०—गृह बनानेवाले के हाथ से १ हाथ का खात खन कर जल से उस खात को पूरित करे । यदि जल एक मुहूर्त तक पूर्ण रहे तो सुख से रहे और मुहूर्त के भीतर जल सूख जाय तो उस स्थान में वास करने से उसी समय उसका नाश होय । जल स्थिर रहे तो निश्चय घर स्थिर रहे । दक्षिण तरफ को जल घूमे तो सौख्य, जल्दी जल के सोखने से और वामावर्त जल घूमने से गृहेश की मृत्यु होती है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

### प्रकारान्तरेण वास्तुप्रदीपे—

अरत्निमात्रके गते स्वानुलिप्ते च सर्वशः ।  
घृतं वरशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् ॥ ७३ ॥  
ज्वालायेद्भूपरीक्षार्थं पूर्वन्तत्सर्वदिङ्मुखम् ।  
दीपान् पूर्वार्दि संगृह्य वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ७४ ॥  
वास्तुसामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः ।  
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च ॥ ७५ ॥

भा० टी०—एक हाथ के गड्ढे को गोबर से चारों तरफ लीपकर अच्छे दिया ( कसोरा ) में घी भरकर चारों ओर चार वर्ती भूमिपरीक्षा के लिये वारे । यदि चारों वर्ती प्रकाशित रहें तो चारों वर्णों के लिए यह वास्तु सामूहिक नामक दीप गृह, और मकान प्रासाद ( द्वालय ) के बनाने में शुभ है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥



खननकाले पाषाणादिदर्शनफलं वास्तुरत्नप्रदीपे-

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टिकायां च समृद्धिरत्र ।  
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥७६॥  
पिपीलिका षोडशपद्मनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता ।  
तुषास्थिवोर्याणि तथैव भस्मान्यगडानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ॥७७॥  
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवातिददाति रोगम् ।  
काष्ठं प्रदग्धं यदि रोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन ॥  
लोहेन कर्तुर्मरणं निगद्य विचार्य वास्तु प्रवदन्ति धीराः ॥७८॥

भा०टी०-खनने के समय जो पत्थल सोना तथा ईटा मिले तो वृद्धि, द्रव्य रुपया वगैरह मिले तो सुख, ताम्रादि धातु मिले तो वृद्धि होय, चूँटी चूँटा मेघा और कीट मिले तो कर्ता न बसे । क्यंकि वह पृथ्वी कर्ता को दुःख तथा कलह देनेवाली है । धान की भूसी, हड्डी, भस्म, अगडे तथा सर्प जिस पृथ्वी में निकलें उस स्थान पर गृह बनाने से मृत्यु होती है । कौड़ी निकले तो लड़ाई होती है । कपास रोगकारक है, जरा काष्ठ मिले तो रोग भय, उसमें खपडोई देखाय तो कलह हो, लोहा दीखने से कर्ता का मरण होता है, यह वास्तु के विचारशीलों ने कहा है ॥७६-७८॥

पृथ्वीशयनविचारः-

प्रद्योतनात्पञ्चनगाङ्गसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु ।  
शेते मही नैव एहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम् ॥७९॥  
भा०टी०-(१)सूर्य के नक्षत्र से दिनका नक्षत्र ५ वां ७वां १२ वां १६ वां २६ वां हो तो पृथ्वी शयन करती है । भूमिशयन नक्षत्रमें गृहारम्भ न करे और तडागत तथा बावली खनना भी शस्त नहीं है ॥ ७९ ॥

विश्वेश्वरभाषितसपरिहारभूमिशयनविचारः-

रवेर्भादिबाणा नगानन्दसूर्या नवेन्द्रङ्गपक्षास्तथाभूमिसुता ।  
भवारुद्रसूर्यापपी(?) ऋक्षभूपाः क्रमेणैव नाड्यो बुधैस्तत्र वर्ज्याः ८०

भा०टी०-सूर्यनक्षत्र से ५।७।९।१२।१९।२६ वें नक्षत्रों पर पृथ्वी शयन करती है । परन्तु पूर्वोक्त संख्यावाले नक्षत्रों का क्रम से ११।११।१२।१२।२७।१६ । भूमिशयन की घटी वर्जित है ॥८०॥

१ अष्टाविंशतिसंख्यादि यस्मिन् चक्रे तु दृश्यते। तत्र चाभिजितं चैव गणनीयं बुधैः स्मृतम् ॥१॥  
वृषभस्य तु चक्रं च चाभिजितकथनात्तथा । सामिजितं यत्र संप्राप्तं तत्रापि गणयेद् ध्रुवम् ॥२॥



तथा शङ्करः—

वेदाष्टपञ्चाग्निरसाद्रिघट्यः शेते मही वै रविभादिनर्चकम् ।

कूपे तडागे त्वथ वापि गेहे बीजोसिलाङ्गल्यपरे शुभः स्यात् ॥ ८१ ॥

भा० टी०—शंकरगणक के मत से उक्त नक्षत्रों की ४८५।३।६।७ नाडी के बाद क्रमशः तडाग कूप वापी गृह बीजोसि और हलप्रवाह में शुभ हैं ॥ ८१ ॥

गणपतिभाषितसप्तभूमिदिक्साधनम्—

साधिन्या च जलेनापि कृत्वा भूमिं समां ततः ।

तत्र दिक्साधनं कृत्वा गेहारम्भं समाचरेत् ॥ ८२ ॥

दिक्शुद्धिरहितं गेहं प्रासादो वा जलाशयः ।

कुर्याद्धानि यतस्तस्मादादौ दिक्साधनं चरेत् ॥ ८३ ॥

भा० टी०—पहले जमीन बराबर करके जल से सोंचकर ( थाली के समान बनाकर ) दिक्साधन करके गृहारम्भ करे । दिक्साधन से रहित गृह, प्रसाद, जलाशय हानि अर्थात् मृत्यु को करते हैं तिससे पहले दिक्साधन करे ॥ ८२॥८३ ॥

तथा भास्कराचार्यः सिद्धान्तशिरामणौ—

वृत्तेऽम्भःसुसमीकृतचित्तिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमाद्

भाग्रं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरेन्द्रयौ दिशौ

तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता—

ल्लम्बज्यासमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥ ८४ ॥

तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भवे-

देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कृतः ।

न्यस्येद् यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोस्संयुतिः

कोटिः प्राच्यपराभवेदितिकृते बाहुश्च याम्योत्तरा ॥ ८५ ॥

भावार्थ—जिस जगह मकान बनाने, उस जगह को जल के समान बराबर करके इष्ट प्रमाण वृत्त बनावे । फिर उसके केन्द्र में १२ अंगुल का शङ्कु खड़ा करे पूर्वादि में तिस शङ्कु को छाया उस वृत्त में जहां प्रवेश करे और उसके बाद अपराहण में जहाँ पहुँचे वह पश्चिम पूर्व दिशा जानें तात्कालिक क्रान्तिज्या साधे तिसके अन्तर से तिसकी छायाके कर्ण गुणा से लम्बज्या भक्त से लब्ध अंगुलादि फल तिसके पूर्व को अथवा दिशा में चालित



करने से स्पष्ट होता है। यदि उत्तरायण सूर्य होय तो उत्तर और जो दक्षिणायन सूर्य होय तो दक्षिण तरफ चालित करे इस तरह से पूर्व पश्चिम स्पष्ट होता है। फिर मत्स्य से दक्षिण उत्तर सुलभ से मालूम होगा ॥८५॥

वास्तुप्रदांपाक्तानि शुभाशुभशकुनानि-

भेरीमृदङ्गानकदुन्दुभीनां शब्दश्च शङ्खस्य च मङ्गलानि ।

शुभानि द्रव्याणि भवन्ति तत्र विप्राश्च बाला तरुणी सबाला ८६

भा० टा०-भेरी, मृदङ्ग, नगाड़ा, शंख का शब्द, हरिद्रा, दुर्वादि मङ्गल शुभ द्रव्य, विप्र, बालक सहित सौभाग्यवती स्त्री गृहारम्भ के समय शुभ होते हैं ॥ ८६ ॥

रामोक्तदिक्परत्वेन राहुमुखं तत्फलञ्च-

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।

मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतास्त्रभे खातेमुखात्पृष्ठविदिक्शुभाभवेत् ८७

भा० टा०-देवालय क आरंभ में मीनार्क स तानर राशया क सूर्यमं ईशानश्चादि राहु का मुख विदशास्त्रा में विपरीत क्रम से रहता है जानना। गृहाराम में सिंहादि तीनर राश में उसा प्रकार आर देवालय क आरंभ में मकरादि तान में वैसही जानना (चक्रमें देखिये स.फ २ मालूम हांगा) इसका प्रयोजन यह है कि राहुके मुख का विदशा में खात न करना राहुके मुख और पूछके बीच पीठ होता है (ईशान के कोण में राहु का मुख है तो पूछ इसकी नैऋत्य कोण में जानै और पीठ आग्नेकोण में जाने) पाठ जहां हो वही खात खने ॥ ८७ ॥

राहुमुखचक्रम-

	ईशान्यां	वायव्यां	नैऋत्यां	आग्नेय्यां
देवालये	१२।१।२ के सूर्य में राहुमुख	३।४।५ के सूर्य में राहुमुख	६।७।८ के सूर्य में राहुमुख	९।१०।११ के सूर्य में राहुमुख
गेहविधौ	५।६।७ के सूर्य में राहुमुख	८।९।१० के सूर्य में राहुमुख	११।१२।१ के सूर्य में राहुमुख	२।३।४ के सूर्य में राहुमुख
जलाशय	१०।११।१२ के सूर्य में राहुमुख	१।२।३ के सूर्य में राहुमुख	४।५।६ के सूर्य में राहुमुख	७।८।९ के सूर्य में राहुमुख

यथा गेहे-

सिंहेकन्या तुलायां भुजगपतिमुखं शम्भुकोणोऽग्निखातम्  
वायव्ये स्यात्तदास्यन्त्वलिधनुमकरे हीशखातं वदन्ति ।



कुम्भे मीने च मेषे निम्नतिदिशि मुखं वायुकोणे च खातं  
चाग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे नैऋते च ॥ ८८ ॥

भा० टी०—सिंह कन्या तुलाके सूर्य में भुजगपति का मुख ईशानकोण में रहता है, तिस समय अग्निकोण में खात करना शुभ है । वृश्चिक धन मकर के सूर्य में वायव्यकोण में मुख रहता है तिस समय ईशान कोण में खात करना अशुभ है, और कुम्भ मीन मेष के सूर्य में नैऋत्य कोण में मुख रहता है उस समय वायव्यकोण में खात करना शुभप्रद है, और वृष मिथुन कर्क के सूर्य में अग्नि कोण में मुख रहता है । अतः उस समय नैऋत्यकोण में खात करने से आनन्द होता है ॥ ८८ ॥

तथा च—

वृश्चिकाद्ये त्रिभे शम्भुकोणे शुभं कुम्भभाद्ये त्रिभे वायुकोणे तथा ।  
उच्चभाद्ये त्रिभे नैऋते भास्करे, सिंहभाद्ये त्रिभे वह्निकोणे खनिः ८९

भा० टी०—वृश्चिक आदि तीन राशियों ( वृश्चिक, धन, मीन ) के सूर्य में ईशान कोण में, कुम्भ आदि तीन राशि ( कुम्भ, मीन, मेष ) के सूर्य में वायव्य कोण में वृष आदि तीन राशि ( वृष, मिथुन, कर्क ) के सूर्य में अग्निकोण में खात खनने से शुभ होता है सिंह आदि ( सिंह, कन्या, तुला ) राशि के सूर्य में अग्निकोण में खात करने से शुभ होता है ॥ ८९ ॥

विश्वकर्मेत्तहस्तप्रमाणम्—

अनामिकान्तं हस्तः स्यादूर्ध्वबाहोः शरांशकः ।  
कनिष्ठिकां मध्यमां वा प्रमाणं नैव कारयेत् ॥ ९० ॥  
स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण च ।  
ज्येष्ठपुत्रकरेणैव कर्मकारकरेण च ॥ ९१ ॥

भा० टी०—बाहु के ऊपर के शरांशकसे अनामिका अँगुली तक का हस्त कहते हैं और कनिष्ठिका तक या मध्यमा तक हस्त का प्रमाण ग्रहण करना । स्वामी के हाथ के प्रमाण से मकान आदि बनावे या उसकी बड़ी स्त्री के हाथ से या ज्येष्ठ पुत्र के हाथ से बनवावे या कर्मकर्ता ( मुनीम या आममुख्तार ) के हाथ से बनवावे ॥ ९१ ॥

अथ गणनाविचारः—

अश्विनीपितृमूलाद्यैस्त्रिभे राशिरिष्यते ।  
शेषभे द्वितयं गेहे विशेषोऽयं प्रकाशितः \* ॥ ९२ ॥

\* मेषेश्वित्रितयं हरो त्रिपितृभं मूलत्रयं अश्विनी द्वे द्वे मे परतो गृहेष्वपि तं प्राग्वत् तु नाढ्यन्यथा । इसका अर्थ अश्विनी पितृमूला के सदृश है ।



भा० टी०-अश्विनी से ३ नक्षत्र मेष राशि, मघा से ३ नक्षत्र सिंह राशि और मूल से ३ नक्षत्र धन राशि है। शेष राशियां दो दो नक्षत्र की होती हैं ॥ ६२ ॥

दम्पत्योरिव राशिकूटभमुखा नाडी विलोमा शुभा

तुर्याशास्तशिवाग्निभं ग्रहभवो राशिः शुभो नामभात् ।

तारासप्तशराग्निकाहिविफला खेटद्विषेऽपुत्रहा

वैरं योनिगणस्य निःश्वभयदा याम्यांशको मृत्युदः ॥ ६३ ॥

भा० टी०-स्त्री पुरुष के सहस्र गृहेश और गृहनक्षत्र का राशिकूट आदि सब देखे। नाडी इसमें विलोम होती है। विवाह में कन्या वर की एक नाडी न होनी चाहिये और इसमें एक नाडी होना शुभ है। नामराशि से चतुर्थ दशम सप्तम एकादश तथा तृतीय गृह की राशि शुभ है तारा ७-५-३ विफल है। नवमा ६ ठा, अशुभ है। योनिवैर और गयावैर हानिकारक है और भयप्रद है। यमांश मृत्यु को देनेवाला है, इसमें विवाह के तुल्य देखना। केवल नाडी एक होनी चाहिये ॥ ६३ ॥

सर्व विवाहवज्ज्ञेयं विपरीता तु नाडिका ।

एकनाडी यदा जाता त्वन्यमेव न चिन्तयेत् ॥ ६४ ॥

भा० टी०-गृह में सब विवाह के तुल्य जाने। परन्तु नाडी एक भी होनी है यदि एक हो तो अन्य बातों का विशेष विचार नहीं होता ॥ ६४ ॥

गोपिराजोक्तपिण्डप्रकारः

विष्णुव्येकायगोभूहतिभयुजिफलं गोपिराजो भशेषात्

सायं वेष्टाष्टिगृह्यायुतमहिनिहतादृक्प्रकृत्याख्यविश्वे ।

बाणःसिद्धाष्टिनागोड्वतिधृतिगिरिश्रयाकृतोन्द्रतु तत्त्वा-

त्यष्टयङ्गदमा नखेनार्णवविकृतिदिनाद्र्युत्कृतीभेन्दुकाष्ठाः ६५

भा० टी०-गोपीराज नामक आचार्य अपने विष्णु शिष्य से कहते हैं कि इष्ट आर्य में १ घटाकर उसको १९ से गुणोक्ति गुणनफल में इष्टनक्षत्र को मिलाकर उसमें २७ का भाग देय जो शेष बचे तो संख्यावार और ध्रुवांक को ग्रहण करे। ध्रुवांकको ८ से गुणा करके उसमें इष्टाय युत करने से पिण्ड होता है। यदि इष्टपिण्ड न्यून होय और मकोन इष्टपिण्ड से अधिक बनाना होय तो पिण्ड में २१६ युत करे। ऐसा करने पर भी यदि अभीष्ट का पिण्ड न आया होय तो २१६ को जैवार युत करने से अभीष्ट पिण्ड आवै तैवार युत करे इस श्लोक में जो आष्टिगृह्यायुत + लिखा है इससे २१६ युत करना स्पष्ट मालूम होता है ॥ ६५ ॥

+ भूपद्वयङ्ग्य स्फुटा भवग्निसततं पिण्डध्वजाद्यायके

एतस्मादधिकेक्षतुमुनिवरैर्भूपारिबभुक् सदा ॥ १॥ (?)



शेषाङ्काः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
ध्रुवाङ्काः	२	२१	१३	५	२४	१६	८	२७	११	११	३	२२	१४	६	२५

शेषाङ्काः	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७
ध्रुवाङ्काः	१७	६	१	२०	१२	४	२३	१५	७	२६	१८	१०

उदाहरण—इष्टनक्षत्र १५ है और इष्ट आय ५ है। इस इष्टाय में १ घटाया तो ४ बचे। इसको १९ से गुणा तो ७६ हुए इसमें इष्ट नक्षत्र स्वाती की संख्या १५ को गुण किया तो ९१ हुये इसमें २७ का भाग दिया तो १० शेष बचे। दशवीं संख्या पर ध्रुवाङ्क ११ मिला। इसको ८ से गुणा तो ८८ हुआ इसमें इष्टाय ५ को मिलाया तो ९३ यह मुख्य पिण्ड हुआ इसमें २१६ को ४ बार जोड़ा तो सिद्ध पिण्ड १५७ हुआ।

सुहृत्तचिन्तामणौगमः ।

एकोनितेष्टर्चाहता द्वितिथ्यो रूपोनितेष्टाय हतेन्दुनागैः ।

युक्ता घनैश्चापियुता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः १०२

भा० टी०—इष्ट नक्षत्र में १ हीन करके उसको १५२ से गुणौ गुणनफल को एक जगह लिखे, फिर इष्ट आय में १ घटाकर के उसको ८१ से गुणौ गुणनफल को पहले के गुणनफल में जोड़ और उसमें १७ और भी मिलावे फिर उस अङ्क में २१६ का भाग देने से शेष पिण्ड होता है। इस पिण्ड से यदि कार्य के अनुसार दीर्घ विस्तार न होसके तो इस पिण्ड में जितने बार २१६ जोड़ने से कार्य हो तै बार जोड़ कर कार्य करे ॥१०२॥

नारदाक्तदीर्घविस्तारप्रकारः—

विस्तृतेन हतं पिण्डं दीर्घेणैव च विस्तृतिम् ।

हस्ताधिकेऽङ्गुलादि स्यात् तद्दीर्घेऽङ्गुलमादिशेत् ॥ १०३ ॥

भा० टी०—पिण्ड में विस्तार का भाग लेने से दीर्घ होता है और पिण्ड में दीर्घ का भाग लेने से विस्तार होता है। यदि भाग लेने से शेष बचे तो उसको २४ से गुणा करके \* अङ्गुल बनावे और ८ से गुणा कर जौ बनावे ॥ १०३ ॥

\* एक से लेकर महाशङ्ख पर्यन्त के सब अंक क्षेत्रफल किसी न किसी अंक का है। जिस क्षेत्रफल में दो का भाग देने से १ शेष मिले वह श्रेष्ठ जाने, और शून्य शेष को अनिष्ट जाने, जैसे १ हाथ भी ४ अंगुल चौड़ा ६ अंगुल लम्बा का क्षेत्रफल है ) ॥

॥ बहुत से अज्ञानी अंगुलादि प्रमाण देख अप्रमाण कहकर पुकारते हैं बहुत से ईंटा पत्थर के गृह में अंगुलादि को बताते हैं परन्तु जो महाशय विश्वकर्माप्रकाश तथा सुहृत्-मार्तण्डा आदि का अवलोकन किये होंगे वह कदापि न कहेंगे।



उदाहरण-पिराड १५७ है, इसमें विस्तार २६ का भाग लिया तो लब्ध दीर्घ ३३ मिले शेष ० बचा यदि पिराड १५७ है इसमें दीर्घ ३३ का भाग लिया तो लब्ध विस्तार २९ शेष शून्य बचा । यदि पिराड ८०७ है तो इसमें विस्तार २५ का भाग दिया तो लब्ध दीर्घ ३२ हुआ शेष ७ बचे इसको २४ से गुणा तो १६८ हुए इसमें २५ का भाग दिया तो लब्ध अंगुल ६ मिला शेष १८ बचे इसको ८ गुणा किया तो १४४ हुए इसमें २५ भाग दिया तो लब्ध ६ जो मिला अर्थात् २५ हाथ चौड़ा, ३२ हाथ ६ अंगुल, ६ जो लम्बा है ॥

गेहस्याय:-

अष्टावशेषिते पिराडे क्रमादाया ध्वजादिकाः ।

केतुर्धूम्रो हरिः श्वा गौर्गर्दभो गजवायसौ ॥ १०४ ॥

भा० टी०-पिराड में ८ का भाग लेने से शेष ध्वजादि आय होता है । १ शेष बचे तो ध्वज, २ शेष बचे तो धूम्र, ३ शेष बचे तो सिंह, ४ शेष बचे तो कुत्ता, ५ शेष बचे तो गौ, ६ शेष बचे तो गर्दभ, ७ शेष बचे तो हस्ती, ८ शेष तो काक आय जानना ॥ १४० ॥

उदाहरण-९५७ पिराड है इसमें ८ का भाग दिया तो शेष ५ बचे यही पाँचवों गो आय है ।

आयपरत्वेन गेहद्वारम्-

केत्वाये सर्वदिग्द्वारं यमपूर्वोत्तरे हरौ ।

इमे प्राग्यमयोः कार्यं प्रत्यग्दिशि वृषे शुभम् ॥ १०५ ॥

भा० टी०-ध्वज आय में सब दिशा में द्वार बनाना शुभ है । सिंह आयमें पूर्व दक्षिण उत्तर में द्वार बनाना श्रेष्ठ है । गज आय में पूर्व पश्चिम मुख का द्वार श्रेष्ठ है वृष आय में पश्चिम मुख द्वार बनाना श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥

आयफलम्

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम् ।

रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥ १०६ ॥

भा० टी०-ध्वजादि आयों का क्रम से कीर्ति, शोक, जय, वैर, धन, दरिद्रता, सुख और रोग फल है । अर्थात् ध्वज का कीर्ति, धूम्र का शोक, सिंह का जय, कुत्ता का वैर, गौ का धन, गर्दभ का दरिद्रता, गज का सुख और ध्वाञ्च का रोग फल है ॥ १०६ ॥

अश्वस्थाने गजः श्रेष्ठो गजसिंहस्तथा वृषः ।

ध्वजःसर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत् ॥ १०७ ॥

वृषं सिंहं गजं चैव पुटकर्कटकादयोः ।

द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरस्सु च ॥ १०८ ॥



मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु पुनर्गजः ।

वृषं भोजनपात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥१०६॥

अग्निवेशमसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम् ।

धूम्रं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥११०॥

खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वाञ्चश्चापि कुटीषु च ।

वृषसिंहौ गजश्चापि प्रासादपुरवेशमसु ॥१११॥

भा० टी०—घोड़ा के घर में ध्वज आय अष्ट है । गज सिंह वृष ध्वज ये सब जगह उत्तम हैं, तथा वृष आयके अन्यत्र ( सिंह गज अश्व के गृह में ) न देय और पुट ककट करिके कीट के गृह में वृष सिंह गज आयको देय, बावली कुआं पोखरा गज आयका बनावै, आसन में सिंह देय, शयन के वस्तु में गज, भोजनपात्र में वृष, छाता आदि में ध्वज, अग्निके घर में और अग्नि से जीविका करनेवाले के घर में धूम्र, म्लेच्छादि के घर में श्वान, वेश्या के घर में खर आय अच्छा है, कुटी में ध्वाञ्च प्रासाद पुर गृहमें वृष सिंह गज आय अष्ट है । अतः उक्त वस्तुओं में उक्त आयों से ही पिण्ड बनाना अष्ट होगा ॥ १०७—१११ ॥

गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम् ।

अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा ॥११२॥

उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृषे ध्वजे ।

पशुगेहं वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम् ॥११३॥

शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः ।

अन्यत्र च्छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा ॥११४॥

पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहाख्येऽप्यथ वा ध्वजे ।

उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः ॥११५॥

भा० टी०—गज आय तथा ध्वज आयमें हस्ती का गृह शुभ है, ध्वज खर वृष में घोड़ा का घर बनाना शुभ है, गज वृष ध्वज आय में ऊंट का घर बनावे अन्य पशुओं के घर बनाने में वृष और ध्वज आय शुभ है, शय्या में वृष, पीठ में सिंह, छाता वस्त्रादि में वृष, ध्वज, खड़ाऊं जूता, सिंह आयमें, या ध्वज आयमें अथवा उक्त अनुक्त सब मन्दिरों में ध्वज आय शुभ है । ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

यन्त्रे शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारं शुभो गजः ।

धान्याम्बुस्थानगोश्वेभशालायां वृषभः शुभः ॥११६॥



भा०-टी०-यंत्र, शस्त्र, रथ में सिंह आय और भण्डार के घर में गज आय, धान्य-गृह, जलगृह वृष, अश्व, गजशाला में वृष आय शुभ है ॥ ११६ ॥

ब्राह्मणस्य ध्वजं दद्यात् सिंहं दद्यात् क्षत्रिये ।

वैश्यस्य च वृषं दद्याद् गजं शूद्रे सदा र्पयेत् ॥ ११७ ॥

चर्मकारगृहे धूम्रं श्वानं हि रजकस्य च ।

वेश्यायाश्च खरं दद्यात् ध्वाञ्च चान्यत्र जातिषु ॥ ११८ ॥

भा० टी०-यद्यपि ब्राह्मण के ध्वज, क्षत्रियों के सिंह, वैश्य के वृष, शूद्र के गज, चर्म-कार के धूम्र, धोबी के श्वान, वेश्या के खर और अन्य जातियों को ध्वाञ्च आय देना शुभ लिखा है, तथापि ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिये "भूमिनिपञ्चसंख्या आयाः शस्तः सदा गृहे" अर्थात् प्रथम तृतीय पंचम सप्तम ब्राह्मणादि के गृह में शुभ हैं ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

रामोक्तमायादिकानयनम्-

पिण्डे नवाङ्गाङ्गजाग्निनाग-नागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।

विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्युत्खभानुभिश्च ॥ ११९ ॥

आयो वारोऽंशको द्रव्यमृणमृत्तं तिथिर्युतिः ।

आयुश्चाथ गृहेशर्चगृहभैक्यं मृत्तिप्रदम् ॥ १२० ॥

भा० टी०-पिंड को ६।६।६।३।८।३।८। से गुणा कर क्रमसे ८।७।२।१२।८ २७ १५।२७।१२० का भाग लेने से आय, वार, अंश, धन, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु होती है, अर्थात् पिंड ६ से गुणा कर ८ का भाग लेने से शेष आय हुआ इसी प्रकार आगे भी जाने । उदाहरण-सिद्ध पिण्ड ९५७ को ६ से गुणा तो ८६१३ हुए इसमें ८ का भाग देने से शेष ५ बचे पांचवां आय हुआ ऐसे ही वारादि भी निकाले ॥ ११९ ॥ १२० ॥

पिण्डाङ्कसंख्याद्रिहतावशेषा द्विधना भवेद्द्वारमिति स्फुटा सा ।

स्वेष्टर्क्षसंख्या त्रिहतावशेषा गुणैर्विनिधना नवमांशकाः स्युः ॥ १२१ ॥

वेदा गजा तथा सूर्या लाभा दस्त्रादिभे क्रमात् ।

त्र्येकसप्तैषवः प्रोक्तं ध्वजादेर्विषमे ऋणम् ॥ १२२ ॥

इन्द्रादेकाधिका योगा दस्त्रादेर्विषमे क्रमात् ।

एकादेकाधिका योगा याम्यादेः समभे तथा ॥ १२३ ॥

पिण्डोऽष्टधनो द्विधा भक्तस्तिथिभिश्च खभानुभिः ।

तिथ्यायुषी भवेतां वै ग्राह्या रिक्ताविवर्जिता ॥ १२४ ॥



भा० टी०—पिण्ड को २ से गुणा कर ७ का भाग देने से शेष वार होता है, नक्षत्र की संख्या को तीनसे भाग लेने से जो शेष बचे उसको ३ से गुणा करने पर अंश होता है अश्विनी आदि नक्षत्रों का ४८।१२ धन होता है (अश्विनी का ४ भरणी का ८ कृत्तिका का १२ फिर रोहिणी का ४ इसी प्रकार आगे भी जानें) ध्वजादि विषम आयका ३१।७।५ ऋण है, अश्विनी आदि विषम नक्षत्रों में एक २ योग अधिक होता है। भरणी से सम नक्षत्रों में एक से एक २ योग अधिक होता है। पिण्ड को ८ से गुणा करके दो जगह धरे, एक जगह १५ का भाग देने से तिथि और दूसरे जगह १२० का भाग देने से आयु होती है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

वार का उदाहरण—पिण्ड ६५७ को २ से गुणा तो १६१४ हुआ इसमें ७ का भाग देने से शेष ३ वचा यह वार हुआ।

अंश का उदाहरण—इष्ट नक्षत्र स्वातीकी संख्या १५ है इसमें ३ का भाग देने से शेष ३ वचा इस शेष को ३ से गुणा किया तो ९ अंश हुआ।

धनका उदाहरण—४८।१२ यह वार २ अश्विनी आदिका क्रम से धन है इससे स्वातीका १२ धन है।

इस चक्र से अंश तथा धन का बोध करें

इन नक्षत्रों का ३ अंश ४ धन है	अ. रो. पु. म. ह. वि. मू. अ. पू.
इन नक्षत्रों का ६ अंश ८ धन है	भ. मृ. पु. पू. चि. अ. पू. ध. उ.
इन नक्षत्रों का ९ अंश १२ धन है	कृ. आ. श्ले. उ. स्वा. ज्ये. उ. श. रे.

ऋण का उदाहरणचक्र से जाने

इन आयों का	१	३	५	७
ये ऋण हैं	३	१	७	५

योग का उदाहरण—अश्विनी से विषम नक्षत्र १४ से एक २ वृद्धि है। अतः अश्विनी का १४ वां कृत्तिका का १५ वां इत्यादि और भरणी से सम नक्षत्र १ से एक २ वृद्धि है अतएव भरणी का पहला रोहिणी का २ रा, आर्द्रा का ३ रा इत्यादि सभी का इसी प्रकार से योग जाने।

तिथि तथा आयु का उदाहरण—पिण्ड ६५७ को ८ से गुणा तो ७६५६ हुआ, इसको दो जगह धरा, एक जगह १५ का भाग दिया तो शेष तिथि ६ मिला, दूसरी जगह ७६५६ में १२० का भाग देने से शेष आयु ९६ हुई।



निम्नलिखित चक्र के अनुसार प्रतिपदादि तिथियों के प्राप्त होने पर जो आयु आती है उसको लिखते हैं।

इन तिथिका	१	२	३	४	५	६	७	८
आयु है	१६	३२	४८	६४	८०	९६	११२	८

इन तिथिका	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
आयु है	२४	४०	५६	७२	८८	१०४	१२०	

वशिष्टोक्तआयादिचिन्तनावधि:—

एकादशयवादूर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि ।

तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत् ॥ १२५ ॥

भा० टी०—एकादश यव से ३२ हाथ तक आयादिक का विचार करे इसके बाद आयादिक का विचार न करे ( इस पर सब ऋषियों की संमति नहीं है ) ॥ १२५ ॥

आयव्ययौ च भूशुद्धिं तृणगेहे न चिन्तयेत् ।

शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारे पुरातने ॥ १२६ ॥

भा० टी०—आय, व्यय और भूशुद्धि को तृण के घर में और पुराने घर में न करना चाहिये तथा पुराने घर में शिलान्यास भी न करना चाहिये ॥ १२६ ॥

रामोक्तमंशज्ञानम्—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक्सपिण्डः ।

तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र १२७

भा० टी०—गृहनक्षत्र को ८ से भाग लेने से जो शेष रहता है वह व्यय होता है। व्यय में ध्रुवादशांश के नामाक्षर की संख्या को जोड़कर पिण्ड में जोड़ दो फिर उसमें ३ का भाग लेने से १ शेष बचे तो इन्द्र, २ बचे तो यम और ३ बचे तो भूप का अंश होता है। इन्द्र अंश भूप अंश अंश है यम अंश अशुभ है ॥ १२७ ॥

उदाहरण—गृहनक्षत्र स्वाती है, इसकी संख्या १५ को ८ से तष्ट करने पर शेष ७ बचे यही व्यय हुआ ॥



गणपत्युक्तध्रुवादिगेहज्ञानं नामाक्षरसंख्या च -

दिक्षु पूर्वादितश्चन्द्रनेत्राभोधिगजैर्मिताः ।

गेहाद् यत्र भवेच्छाला तदङ्का कथिता इमे १२८

शालेशाङ्कयुतिः सैका ज्ञेयं गेहं ध्रुवादिकम् ।

आषष्ठं दशमं विश्वं मन्दिरं द्व्यक्षराभिधम् ।

शेषाणि त्र्यक्षराणि स्युः सप्तमं चतुरक्षरम् १२९

व्य.	नक्षत्र			
१	अ.	श्ले.	अ.	पू.
२	भ.	म.	ज्ये.	उ.
३	कृ.	पू.	मृ.	रे.
४	गे.	उ.	पू.	०
५	मृ.	ह.	उ.	०
६	आ.	चि.	अ.	०
७	पु.	स्वा.	ध.	०
८	पु.	वि.	श.	०

आ० टी०—पूर्वादि दिशाओं का शालाध्रुवांक क्रम से १।२।४।८ है अर्थात् पूर्वमुख द्वार में १, दक्षिण मुख में २, पश्चिम मुखद्वार में ४, और उत्तर मुख द्वार में ८, हैं। जितनी दिशाओं में द्वार होय उनके ध्रुवांक को जोड़ कर उसमें १ और जोड़ने पर शालागृह होता है। पहले से छठवें तक और दशावों तेरहवां घर दो अक्षर का सातवां ४ अक्षर का और शेष ८।११।१२।१४।१५।१६ घर तीन अक्षर का नाम है ॥१२८॥१२९॥

उदाहरण—हरिहर व्यास पूर्व और पश्चिम मुख का गृह बनाना चाहते हैं। पूर्व का शालाध्रुवांक १ पश्चिम का शालाध्रुवांक ४ दोनों को एक में जोड़ा ५ हुआ इसमें १ और मिलाया ६ हुआ छठवां “कान्त” नामक गृह हुआ। चन्द्रमा पश्चिम दक्षिणमुख गृह बनावेंगे। दक्षिण का शालाध्रुवांक २ पश्चिम का ४ दोनों को एकत्र जोड़ा तो ६ हुआ इसमें १ और मिलाने से सातवां मनोरमगृह हुआ ॥

ध्रुवादिषोडशगेहानि -

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् ।

सुमुखं दुर्मुखञ्चोत्रं रिपुदं वित्तदं तथा ॥

नाशमाक्रन्दविपुले विजयं चेति षोडश ॥ १३० ॥

आ० टी०—ध्रुव-धान्य-जय-नन्द-खर-कान्त-मनोरम-सुमुख-दुर्मुख-उत्र रिपुद-वित्तद-नाश-आक्रन्द-विपुल-विजय-ये ही सोलह घरों के नाम हैं ॥ १३० ॥

सोदाहणध्रुवादिनामानि -

ध्रुवं त्वाद्यं गृहं प्रोक्तं सर्वद्वारविवर्जितम् ।

धान्ये पूर्वदिशि द्वारं दक्षिणे जयसंज्ञकम् ॥ १३१ ॥

प्राग्दक्षिणे नन्दगृहे पश्चिमे खरमेव च ।

प्राक्पश्चिमे तथा कान्ते प्रत्यग्यामे मनोरमे ॥१३२॥



सुवक्त्रे चोत्तरे वर्ज्यं दुर्मुखं चोत्तरे तथा ।

प्रागुत्तरे क्रूरसंज्ञे विपदो दक्षिणे तथा ॥ १३३ ॥

धनदे पश्चिमे वर्ज्यं क्षयं चोत्तरपश्चिमे ।

आक्रन्दे दक्षिणे त्याज्यं विपुले पूर्वमेव च ॥ १३४ ॥

विजयाख्यं चतुर्द्वारमलिनदैः सर्वतो युतम् ॥

राज्ञां सिद्धिकरं प्रोक्तं सर्वतोभद्रसंज्ञकम् ॥ १३५ ॥

भा० टी०—जिस गृह में द्वार न हो उसका १ “ध्रुव” १, नाम है, पूर्वदिशा में मुख हो तो “धान्य” २, दक्षिण मुख हो तो “जय” ३, पूर्व पश्चिम मुख हो तो “नन्द” ४, पश्चिम मुख द्वार हो तो “खर” ५, पूर्व पश्चिम मुख द्वार होय तो “कान्त” ६, दक्षिण पश्चिममुख द्वार हो तो “मनोरम” ७, जिसमें उत्तर द्वार न होय अन्य तीन दिशा में द्वार हो वह “सुमुख” ८, जिसमें उत्तर मुख द्वार हो वह “दुर्मुख” ९, पूर्व उत्तर द्वार हो तो “क्रूर” १०, पूर्व उत्तर दक्षिण द्वार हो तो “रिपुद” ११, जिसमें पश्चिम द्वार न हो अन्य तीन दिशा में द्वार हो वह “धनद” १२, पश्चिम उत्तर द्वार हो तो “क्षय” १३, दक्षिण को छोड़ कर अन्य तीन दिशा में द्वार हो तो “आक्रन्द” १४, पूर्व दिशाके अतिरिक्त अन्य तीन दिशाओं में द्वार हो तो “विपुल” १५, और जिसमें चारों दिशाओं में द्वार हो और चारों तरफ अलिनद (ओसारा वा वरामदा) हो वह “विजय” नामक २ सर्वतोभद्र १६ राजाओं का कार्य सिद्ध करनेवाला है ॥ १३११३२॥ १३३॥ १३४॥ १३५॥

ध्रुवादिषोडशगृहज्ञानार्थं नारदाक्तप्रस्तारप्रकारः —

गुरोरधो लघु न्यस्य पुरस्तात् पूर्ववन्न्यसेत् ।

गुरुभिः पश्चिमं पूर्य यावत् सर्वलघुर्भवेत् ॥ १३६ ॥

भा० टी०—गुरु (दीर्घ) वर्ण के नीचे लघु लिखे आगे जैसा ऊपर हो वैसा लिखे और वारें गुरुवर्णों से पूर्य करे आगे के वाक्यों का भी यह अर्थ है “आद्याद् गुरोरधो लघु न्यसेत् यथोपरि तथा शेषं पूरयेत्, वामे गुरुं न्यसेत्” ॥ “असौ वक्रो गुरुर्बो यो ह्यन्यो वै मातृको ऋजुः” गुरु टेढ़ा और लघु ऋजु (सरल सीधा) लिखो, जहाँ जहाँ लघु का चिह्न अर्थात् खड़ी पाई है, वही द्वार जाने ॥ १३६ ॥

	पू०	द०	प०	उ०	
( १ )	५	५	५	५	ध्रुव
( २ )	।	५	५	५	धान्य
( ३ )	५	।	५	५	जय
४ )	।	।	५	५	नन्द



( १ )	५	५	१	५	खर
( ६ )	१	५	१	५	कान्त
( ७ )	५	१	१	५	मनोरम
( ८ )	१	१	१	५	सुमुख
( ९ )	५	५	५	१	दुमुख
( १० )	१	५	५	१	उग्र
( ११ )	३	१	५	१	रिपुद
( १२ )	१	१	५	१	वित्तद
( १३ )	५	५	१	१	नाश
( १४ )	१	५	१	१	आक्रान्त
( १५ )	५	१	१	१	विपुज
( १६ )	१	१	१	१	विजय

रत्नमाळायां ध्रुवादिकं प्रकारान्तरेणाह-

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा षट्चन्द्रैर्भागमाहरेत् ।

शेषाङ्के तु स्मृतं नाम ध्रुवादिक्रमतो बुधैः ॥१३७॥

ध्रुवश्च धान्यञ्च जयञ्च नन्दं

खरञ्च कान्तञ्च मनोरमञ्च ॥

सुवक्त्रसंज्ञं खलु दुमुखञ्च

क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयं च ॥ १३८ ॥

आक्रान्तसंज्ञं विपुलाह्वयश्च ।

स्यात् षोडशं तद् विजयाभिधानम् ॥

भा० टी०-गृह पिण्डकोट से गुणा कर १६ भाग देने से एकादि शेषप्राप्त होने से ध्रुव १, धान्य २, जय ३, नन्द ४, खर ५, कान्त ६, मनोरम ७, सुमुख ८, दुमुख ९, उग्र १०, विपक्ष ११, धनद १२, क्षय १३, आक्रान्त १४, विपुल १५, विजय १६, ये नाम के १६ गृह होते हैं ।

उदाहरण-"भनागतष्टं" इस श्लोक के नीचे जो उदाहरण लिखा है, उसमें व्यय ७ है "दिल्लु पूर्वादितः" इस श्लोक के नीचे जो जगद्धामप्रसाद के नाम पर उदाहरण लिखा है वहाँ शालाध्रुवांक में १ मिलाने पर १० भया है । दशवाँ ध्रुवादि में अग्रसंज्ञक है । इसमें दो अक्षर हैं । अतः व्यय ७ में २ को मिलाया तो ९ हुआ । इसमें पिण्ड ६५७ को युत किया तो ६६६ हुए । इसमें ३ का भाग दिया तो शेष शून्य बचा है । (यहाँ तीन शेष माना जायगा ) इससे राजग्रंथ होगा इसका फल शुभ है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥



दात्रादिमण्डलम्-

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।

नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं मण्डल उच्यते ॥१३६॥

दाता च भूपतिश्चैव क्लीबश्चौरो विचक्षणः ।

षष्ठो भोगी धनाढ्यश्च दरिद्रो धनदस्तथा ॥ १४० ॥

भा० टी०—स्वामी के हस्त के प्रमाण से जो लंबाई चौड़ाई होय, उसको एकत्र कर के उसमें ९ का भाग देने से एकादि शेषमें क्रमसे दाता, भूपति, नपुंसक, चौर, विचक्षण, भोगी, धनाढ्य, दरिद्र, धनद, इनका मण्डल होता है \* ॥ १३९ ॥ १४० ॥

उदाहरण—स्वामी के हाथ के प्रमाण से लंबाई ३३ हाथ है, चौड़ाई २६ हाथ है । इसको एकत्र किया तो ६२ हुए । इसमें ६ का भाग देने से शेष ८४चे, आठवाँ मंडल दग्धि और २१ हाथ चौड़ा २५ हाथ लंबा है । इसको एकत्र किया तो ४६ हुए इसमें ६ का भाग से शेष १ बचा, इस मंडल का नाम दाता है ॥

क्षेत्रप्रमाणशुद्धिर्ग्रन्थान्तरे-

चरणात्कर्णपर्यन्तं दण्डं सरलवंशजम् ।

पूर्वतः पश्चिमं यावदुत्तरां दक्षिणां तथा ॥१४१॥

तयोश्च दण्डयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्यताम् ।

अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन शुभाशुभम् ॥१४२॥

प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत्फलमादिशेत् ।

द्वितीयं चर्मकारस्य क्षुत्पिपाशाकुलो गृही ॥१४३॥

तृतीये ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत् ।

चतुर्थे शुद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम् ॥ १४४ ॥

\* यह मंडल का विचार मुख्य नहीं है, गौण है । यह विचार करने से अच्छे २ पिण्ड नष्ट हो जाते हैं, इससे इसका विचार न करना चाहिये । देखिये—'त्रिभिस्त्रिभिर्वैश्वानरि कृष्य कायैरुच्छेदपुत्राप्तिवनानि शोकम् । यत्रोर्ध्वं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासी च नव प्रभेदाः । इस श्लोक के अनुसार आर्द्रा पु. पुष्य, श्ले. म. पू. श. पू. भा. का. व. भा. ये ही नक्षत्र श्रेष्ठ हैं परन्तु यह पक्ष ग्राह्य नहीं है । और देखो—व्यवहारसमुच्चय में लिखा गया है "शुक्लपक्षे भवेत् सौम्यं कृष्णे तत्करतो भयम् । तथा वशिष्ठः गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणो ज्ञायमानयोः । शुक्लपक्षे दिवाकार्यं न निर्माणं च रात्रिषु ॥ इस श्लोक में शुक्लपक्ष में गृहारंभ करना लिखा है । यह भी सामान्य वचन है । गृहारंभ पूर्णमध्य चन्द्रमा रहने पर दोनों पक्ष में शुभ है । "मध्यपूर्वगते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे शुभप्रदः" इस वाक्य से एक वाक्य और भी स्पष्ट हो जाता है ।



पञ्चमे योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम् ।

षष्ठे तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १४५ ॥

सप्तमे क्षत्रियस्थानं सदा युद्धकरं नृणाम् ।

अष्टमे च क्रियास्थानं मरणं रोगकारकम् ॥ १४६ ॥

भा० टी०—दक्षिण पैरके अंगुष्ठ से दक्षिण कानके ऊपर तक एक बॉसकी लकड़ी नापले उसी से मकान की लंबाई चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक नापें जो नापने से होय उसको एक जगह जोड़देय । फिर उसमें ८ का भाग देने से जो शेष बचे, उससे शुभाशुभ फल जानें, १ शेष बचे तो शुभ फल देनेवाला रजकका स्थान जाने, २ शेष बचे तो क्षत्रिय वृषासे व्याकुल करनेवाला चमार का स्थान जाने, ३ शेष बचे तो जनों का भारी उद्वास करनेवाला ब्राह्मण का स्थान जाने, ४ शेष बचे तो धन धान्य का बढ़ाने वाला शूद्र का स्थान जाने, ५ शेष बचे तो भारी उद्वास योगी का स्थान जाने, ६ शेष बचे तो सर्व सिद्धि करनेवाला गोपका स्थान जाने, ७ शेष बचे तो सदा युद्ध करने वाला क्षत्रिय का स्थान जाने और ८ शेष बचे तो मरण और रोग फलका करनेवाला तेली का या चर्मकारका स्थान जाने \* ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

उदाहरण—२९ हाथ चौड़ाई, और ३३ हाथ लंबाई को वंशदंड से नापें । चौड़ाई तो आठ दंड है, और लंबाई नौ दंड है । इसको एकत्र जोड़ा तो १७ हुआ इसमें ८ का भाग देने से शेष १ बचा । इससे शुभ फल देनेवाला प्रथम स्थान रजक का है ।

चन्द्रसूर्यवेधः—

गृहे ग्रामे तथा क्षेत्रे तडागारामभूमिषु ।

चन्द्रवेधस्तु कर्त्तव्यः सौरः कोष्ठाग्निजीविनाम् ॥ १४७ ॥

भा० टी०—गृह में, ग्राम में, क्षेत्र में तडाग में और आराम ( वगैचा ) की भूमि में चन्द्र वेध करना चाहिये और कोष्ठ अग्निजीवियों का सूर्य वेध करना श्रेयस्कर होता है “चन्द्रवेधं गृहे कार्यं सूर्यवेधं जलाशये । उभयोः वाटिकायां च वेधं सौम्यफलप्रदम्” इस वाक्य को बहुत लोग कहते हैं और इसीके अनुसार देखने में भी आता है । इसका भावार्थ यह है कि चन्द्रवेधी गृह बनावे और सूर्यवेधी जलाशय ( बावली तालाव ) बनावे

\* यह भी गौणयक्ष है मुख्य तो जिस भूमि में दशा बनें अथवा जिस भूमि के देखने से मन प्रसन्न होजाय, वहाँ अपने नक्षत्र से जिस नक्षत्र से गणना बनें, उससे गणना गिनें ( इसमें नाड़ी एव रहना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि “नाड़ीमेदे गेहमुद्रासनं च, ) और सप्त वर्णादिक की शुद्धि विवाहवत् विचारे । फिर उस नक्षत्र का पिण्ड बनाकर धन से ऋण कम देखकर तथा आयु अधिकवाले पिंड से दीर्घ विस्तार बनाकर गृहनिर्माण विधि में जैसा शिलान्यासका प्रकार लिखा है उस प्रकार से नेय देकर गृह बनावें, बाद विधि से हवन करके मकान में प्रवेश करने से आयु, कीर्ति, पुत्र तथा धनादि की वृद्धि अवश्य होगी ।



सूर्य चन्द्र दोनों वेध बगैचे में श्रेष्ठ हैं ( दक्षिणोत्तर दीर्घ चन्द्रवेध, और दक्षिणोत्तर विस्तार सूर्यवेध जाने ) ॥ १४७ ॥

भित्तिविचारो गृहचिन्तापणौ-

गृहे मृन्मये मानमन्तः प्रधानं तथा चेष्टिकाभित्तिभागं तदद्धम् ।  
तथा चेपलानां सभित्या सदैव प्रकुय्याद् बुधश्चान्यथा वित्तनाशम्

भा० टी०-मिट्टी के घरमें भीतको छोड़कर पिण्डका नाप करे । ईंट के मकान में आधी भीत के पिण्डको नाप कर रखे । पत्थर के मकान का पिण्ड भीतके समेत बुधगण बनावे अन्यथा धनका नाश होता है ॥ १४८ ॥

विशेषविचारस्तत्रैव-

अङ्गेषु वङ्गेषु कलिङ्गदेशे सौराष्ट्रदेशे मगमध्यदेशे ।  
मरुज्जले सिन्धुगिरिप्रदेशे सभित्तिमानं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ १४९ ॥  
ग्राह्यं सगर्भं यदि मध्यदेशे तथापि चाग्निनृपचौरयुद्धम् ।  
उद्वन्धनं घातविघातमेव इदं हि वाक्यं कथितं वशिष्ठैः ॥ १५० ॥

भा० टी०-अङ्ग, वङ्ग ( बङ्गाल ), कलिङ्ग, सौराष्ट्र, मगध, मरुदेश ( मारवाड़ ), सिन्ध और गिरिदेश में भीत लेकर गृहका नाप माना गया है, जो मध्य देश में गर्भ मात्र गृह का पिण्ड बनाते हैं तो वशिष्ठ का कथन है कि अग्निभय, राजभय, युद्ध, उद्वन्धन, घात-विघातादि फल होता है ॥ १४९ ॥ १५० ॥

एकभित्तिगृहद्वयसंबन्धनिषेधे वशिष्ठः-

एकभित्तिषु सम्बन्धं कारयेद्यो गृहद्वयम् ।

यमतुल्यं तदा नाम भर्तुर्देहिनाशनम् ॥ १५१ ॥

भा० टी०-एक भीत में लगाकर जो दो मकान बनाते हैं, वह मकान यमराज के तुल्य है । इससे वह गृहेश का नाश करता है ॥ १५१ ॥

गृहारम्भपासफलम् वास्तुराजवल्लभे -

चैत्रे शोककरं गृहादि रचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदम्

ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्बुद्धिदं श्रावणे ।

शून्यं भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके

धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीमार्धे श्रियं फाल्गुने ॥ १५२ ॥

भा० टी०-चैत्र में गृहारम्भ करने से शोक, वैशाख में धनलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशुनाश, आषाढ में बुद्धि की प्राप्ति, भाद्र में शून्य फल, कुम्भार में फलद,



कार्तिक में नौकर का नाश, अगहन और पूस में धान्य लाभ, माघ में \* अग्निभय और फाल्गुन में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ १५२ ॥

तथा वास्तुप्रदीपे—

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।

वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च ॥ १५३ ॥

आषाढे मृत्यरत्नं वै पशुवर्जमथाप्नुयात् ।

श्रावणे मित्रलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥ १५४ ॥

भार्याहानिमिषे मासि कार्तिके धनधान्यक् ।

मार्गशीर्षे तथा वित्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥ १५५ ॥

लाभं तु बहुशो विद्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।

काञ्चनं फाल्गुने विद्यादिति सासफलं बुधैः ॥ १५६ ॥

भा० टी०—चैत्र में जो मनुष्य गृहारम्भ करते हैं, उनको व्याधि होती है, वैशाख में धन-रत्न लाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ में मृत्यरत्नलाभ और पशुहानि, श्रावण में मित्रलाभ, भाद्रपद में हानि, कुवार में स्त्रीहानि, कार्तिक में धन धान्य, अगहन में धन, पूस में चोरभय, माघ में बहुत प्रकार का लाभ तथा अग्निभय और फाल्गुन में सुवर्ण-लाभ होता है + ॥ १५३—१५६ ॥

नारदः—

सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ।

मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदाः ॥ १५७ ॥

भा० टी०—अगहन, फाल्गुन, वैशाख, माघ श्रावण और कार्तिक मास में गृहारम्भ करने से पुत्र और आरोग्य लाभ होता है ॥ १५७ ॥

वशिष्ठः—

मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्रिषे ।

उर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ १५८ ॥

भा० टी०—फाल्गुन, माघ, वैशाख, श्रावण, आश्विन ( कुवार ) और कार्तिक के मास में गृह बनाने से पुत्र पौत्र और धनका लाभ होता है ॥ १५८ ॥

श्रीपतिपाणितचान्द्रमासफळम्—

शोकं धान्यं मृतिपशुहतिर्द्रव्यवृद्धिर्विनाशो

\* माघ में चनके ही संक्रान्ति में अग्निभय होना संभार है । + यह भी गोवर्षण है ।



युद्धं भृत्यक्षतिरथ फलं श्रीश्च वह्नेर्भयं च ।  
 लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण  
 चैत्रात्कुम्भे मुनिभिरुदितं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥१५६॥

भा० टी०—चैत्रादि चान्द्रमास में गृहारम्भ करने से क्रमशः शोक, धान्य, मृत्यु, पशुहानि, द्रव्यवृद्धि, विनाश, युद्ध, भृत्यक्षति, लक्ष्मीप्राप्ति, अग्निभय और लक्ष्मी-फल प्राप्ति होता है ॥१५९॥

रामसेवाक्तगृहारम्भमासाः मासवर्णपरत्वेन द्वारं च—

गृहं द्विस्वभावस्थसूर्ये न कार्यं  
 तुलाजालिगोऽर्के मुखं दक्षसौम्ये ।  
 मृगे कुम्भकर्के हरौ प्राक् च पश्चाद्  
 द्विजादेमुखं पश्चिमादौ क्रमेण ॥१६०॥

भा० टी०—द्विस्वभावराशि ३।६।९।१२ के सूर्य में गृहारम्भ न करे । तुला, मेष, वृश्चिक और वृष राशिके सूर्य में गृहारम्भ करे तो गृहका उत्तर मुख द्वार करे और मकर, कुम्भ, कर्क तथा सिंह राशि के सूर्य में गृहारम्भ करे तो पूर्व पश्चिम मुख गृहका द्वारकरे और ब्राह्मणादि के पश्चिम आदि दिशा में क्रम से गृह का द्वार होना श्रेष्ठ है ॥१६०॥

संक्रान्तिवशेन नारदाक्तमासफलम्—

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।  
 वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं भवेत् ॥ १६१ ॥  
 कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविनाशनम् ।  
 स्त्रियां रोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्द्धनम् ॥१६२॥  
 कामुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमम् ।  
 कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने रोगभयं भवेत् ॥ १६३ ॥

भा० टी०—मेष राशिके सूर्य में गृहारम्भ करने से शुभ, वृष में धनवृद्धि, मिथुन में मरण, कर्क में शुभ, सिंह में भृत्यनाश, कन्या में रोग, तुला में सौख्य, वृश्चिक में धनवृद्धि, धनमें महाहानि, मकर में धनका आगम, कुम्भ में रत्नलाभ और मीन राशि के सूर्य में रोग होता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

रामोक्तः—

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्कयोः



पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोजगेऽर्के च राधे ।

मार्गे जूकालिके सत् ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्ये

सूतीगेहं त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः । १६४॥

भा० टी०-कुम्भ के सूर्ययुत फाल्गुन मास में गृहारम्भ करे तो पूर्व पश्चिम मुख द्वार शुभ होता है, ५४ के सूर्य में श्रावण में और मकर के सूर्य में पौष में भी पूर्व पश्चिम द्वार करना शुभ है । १२ के सूर्य सहित वैशाख में तथा ७८ के सहित अग्रहन में दक्षिण उत्तर मुख द्वार करना शुभप्रद है, ध्रुव ( उ. ३ रो. ) मृदु ( मृ. चि. अनु. ) शततारका, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त, पुष्य, ये गृहारम्भ में शुभ हैं । पुनर्वसु नक्षत्र में सूत्रिका का गृह शुभ है तथा श्रवण और रोहिणी में सूत्रिका गृह में प्रवेश करे तो शुभ होता है ॥ १६४ ॥

रामोक्तः—

कश्चिन्मेषगते रवौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे

भाद्रे सिंहगते धटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके ।

माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्

कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत् कृष्णादिमासाद्भवेत् ॥ १६५॥

भा० टी०-किसी आचार्य का मत है कि मेष के सहित सूर्य चैत्र में, वृष के सहित सूर्य ज्येष्ठ में, कर्क के सहित सूर्य आपाढ़ में, सिंह के सहित सूर्य भाद्रपद में, तुला के सहित सूर्य आश्विन में, वृश्चिक के सहित सूर्य कार्तिक में, मकर के सहित सूर्य पौष में, मकर कुंभ सहित सूर्य माघ में हो तो गृहारम्भ करना शुभ है, कार्तिक में कन्या के सूर्य में शुभ नहीं है ( १ ) ॥ १६५ ॥

रामभाषितवृषभचक्रम्—

गेहारम्भेऽर्कभाद्रत्सशीर्षे रामैर्दाहो वेदभैरवपादे

१ मिथुन-कन्या-धन-मीन के सूर्य में गृहारम्भ करने से अशुभ होता है, वृष, सिंह तुला के सूर्य में मध्यम है । मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर और कुम्भ राशि के सूर्य में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है । चैत्र मीन के ही संक्रान्ति में निषेध किया है, मेष के सूर्य में चैत्र श्रेष्ठ है, वैशाख में मेष वृष के सूर्य में भी श्रेष्ठ है । ज्येष्ठ में मिथुन के सूर्य में निषेध है । वृष के सूर्य में विहित है, आपाढ़ मिथुन के सूर्य में निषेध और कर्क में विहित है, श्रावण में मिथुनाक निषेध है । कर्क सिंह के सूर्य में विहित है, भाद्रपद कन्या के सूर्य में निषेध है, कर्क सिंह के सूर्य में विहित है, आश्विन में कन्या का सूर्य निषिद्ध है, तुला के सूर्य में शुभ है, कार्तिक में ६ का रवि निषेध ७ का सामान्य तथा वृश्चिक का श्रेष्ठ है, मार्गशीर्ष ७-८ के सूर्य में श्रेष्ठ है, पौष मकर वृश्चिक के सूर्य में विहित है, माघ धन के सूर्य में निषेध है, मकर कुंभ के सूर्य में श्रेष्ठ है । वैशाख में फाल्गुन में मीन तथा मार्गशीर्ष में धन के सूर्य में निषेध है ।



शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीयुर्गैर्दक्षकुक्षौ ॥१६६॥  
 लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैः स्वं वामकुक्षौ क्रमेण ।  
 रामैः पीडासंततंचार्कधिष्यादश्वैरुद्वैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत्सत् ॥१६७॥

भा० टी०-गृहादि और ग्रामादि के आरम्भ में सूर्य के नक्षत्र से दिननक्षत्र पर्यन्त वृषभ के शिरमें ३ दाह फल देनेवाला एवं ४ अप्रपाद में शून्यफल, ४ पृष्ठपाद में स्थिर फल दाता ३ पृष्ठ में श्री फल, फिर ४ दक्षिण कुक्षि में लाभ, ३ पुच्छ में स्वामिनाश, ४ वामकुक्षि में दरिद्रता, ३ मुख में पीडा सर्वदा होवे । यह वृष वास्तुचक्र का प्रकारान्तर है, सूर्य के नक्षत्र से दिन नक्षत्र पर्यन्त, गणना करने पर ७ तक अशुभ बाद ११ पर्यन्त शुभ और फिर १० अशुभ है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

वशिष्टोक्तशुभाशुभनक्षत्राणि-

रविभात् सप्त नेष्टानि शुभान्येकादशाष्टभात् ।  
 दश शेषान्यनिष्टानि साभिजिद्वृषवास्तुनि ॥१६८॥

भा० टी०-सूर्य के नक्षत्र से दिननक्षत्र तक गिनै, गिनने से ७ के भीतर अशुभ ८ से फिर ११ नक्षत्र शुभ हैं । याने १८ वें नक्षत्र तक शुभ दश शेष नक्षत्र अशुभ हैं । इस वृषवक्र में अभिजित् नक्षत्र का भी ग्रहण करना चाहिये ॥ १६८ ॥

स्वगृहात्पतीच्यां दक्षिणाशयां गृहं न विधेयं माण्डव्यः-

वास्तुक्षेत्रादवाक् पश्चाद् दिशि नैव गृहं चरेत् ॥  
 उत्तरस्यां तु पूर्वस्यां गृहात्सर्वगृहं कुरु ॥ १६९ ॥  
 सद्गमोच्चाद्द्विगुणाधिकान्तरभुवि प्रत्यक् तथा दक्षिणे  
 कुर्यात्तच्च भवेच्छुभाय भवनं सत्कर्मणां सिद्धये ।  
 माण्डव्यादिमुनीन्द्रगर्गप्रभवा एवं वदन्तीति च  
 संशोध्यैव गृहं विधेयमखिलैर्भव्यादिकर्माखिले ॥१७०॥

भा० टी०-वास्तुक्षेत्र के अर्थात् पूर्वगृह के दक्षिण पश्चिम दिशा में घर न बनवावै और पूर्व गृह से पूर्व तथा उत्तर की दिशा में सब घर बनवावै । पूर्वगृह में जितना ऊँचा होय, उसको दूना करने से अधिक के अनन्तर दक्षिण पश्चिम दिशा में भी शीघ्रता से घर बनवावै तो वह घर शुभ तथा सत्कर्म के सिद्धि के लिये होता है । माण्डव्य गर्गादि मुनीन्द्र ऐसा कहते हैं । विद्वान् को उचित है कि विचार में सम्पूर्ण कर्म सिद्ध करने के लिये घर बनावै ॥ १६९ ॥ १७० ॥

तथा च वाराहीसंहितायाम्-

इच्छेच्च यदि गृहवृद्धिं समन्ताच्च विवृद्धये ॥



एको देशे दोषः प्रागथवाप्युत्तरे कुर्यात् ॥ १७१ ॥

प्राक् भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ॥

अर्थविनाशः पश्चादुदग्विवृद्धौ मनस्तापः ॥ १७२ ॥

भा० टी०—यदि गृह बढ़ाना चाहे तो चारों दिशा में बढ़ावे, किसी एक दिशा में बढ़ाने से क्रमशः पूर्व में मित्रविरोध, दक्षिण में मृत्यु, पश्चिम में धन का नाश और उत्तर की ओर गृह बढ़ाने से मन में ताप होता है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

गृहारम्भतिथिः व्यवहारसमुच्चये—

द्वितीया पंचमी मुख्या तृतीया षष्ठिका तथा ।

सप्तमी दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा ॥१७३॥

त्रयोदशी पंचदशी तिथयः स्युः शुभावहाः ।

दारिद्र्यं प्रतिपत् कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ॥१७४॥

अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी ।

दर्शे राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनम् ॥ १७५ ॥

भा० टी०—२।३।५।६।७।११।१२।१३।१५ इन तिथियों में गृहारम्भ करने से शुभ है। प्रतिपदा दरिद्र करती है, चतुर्थी धन हरती है, अष्टमी उच्चाटन करती है, नवमी शस्त्र-घात कराती है, अमावस राजभय करता और चतुर्दशी स्त्री का नाश करती है । ❀

गर्गोक्तानि गृहारम्भनक्षत्राणि—

त्र्युत्तरे मृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये ।

धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥१७६॥

भा० टी०—तीनों उत्तरा, मृगशिरा, रोहिणी, पुष्य, अतुलाधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र में गृहारम्भ करना शुभ है ॥१७६॥

तथा च—

चित्राशतभिषा स्वाती हस्तः पुष्यपुनर्वसू ।

रोहिणीरेवतीमूलश्रवणोत्तरफाल्गुनी ॥१७७॥

❀ तिथिपरत्वेन द्वा। निषेधः व्यवहारसमुच्चये—

पूर्णिमान्तोऽष्टमीयावत् पूवांस्थं वर्जयेद्गृहम् ।

उत्तरास्थं न कुर्वीत नवम्यादि चतुर्दशीम् ।

अमावस्याष्टमीयावत् पश्चिमास्थं विवर्जयेत् ।

नवम्यादौ दक्षिणास्थं यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ।



धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता ।

अश्विनी मृगशीर्षे च अनुराधा तथैव च ॥१७८॥

वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।

समाप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥१७९॥

भा० टी०—चित्रा शतभिषा स्वाती हस्त पुष्य पुनर्वसु रोहिणी रेवती मूल ज्येष्ठा उत्तराफाल्गुनी धनिष्ठा उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा अश्विनी मृगशिरा और अनुराधा इन नक्षत्रों में जो मनुष्य वास्तुपूजा करते हैं, वे लक्ष्मी प्राप्त करते हैं । ( इसमें अश्विनी पुनर्वसु मूल और ज्येष्ठा का नाम विशेष आया है, ये चार नक्षत्र मध्यम हैं । आर्द्रा ज्येष्ठा ७ का भी साधारण नक्षत्रोंमें ग्रहण है और १३ नक्षत्र उत्तम हैं ) ॥१७७॥१७८॥१७९॥

पुनर्वसौ च सूतिकाग्रहस्य निर्मितिः शुभा ।

विरिञ्चिविष्णुभान्तरे प्रवेशनं हितं भवेत् ॥१८०॥

भा० टी०—सूतिकाग्रह बनाने में पुनर्वसु नक्षत्र शुभ है और रोहिणी तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में प्रवेश करना शुभ है ॥१८०॥

सूर्यांशे गुरुशुक्रवृद्धादिनिषेधः—

नखाङ्गदलेश्चभुजैर्मिते वै सूर्यांशके नैव गृहं विधेयम् ।

वृद्धास्तबाल्येगुरुशुक्रयोस्तथाजन्मर्चलग्नाद्भवसुलग्नकेऽपि ॥१८१॥

भा० टी०—सूर्य का २०, २६, ११, २ गतांश रहने और गुरु शुक्र के वृद्ध बाल्य अस्त रहने पर तथा जन्मराशि और जन्मलग्न से आठवें लग्न पर गृह न बनावे ॥१८१॥

योगश्च—

विधोर्वा गृहस्यापि धिष्णं पुरश्चेद्

वसेत् तत्र कर्ता न पृष्ठे खनिः स्यात् ।

परांशे खगः कर्मजायान्त्यसंस्थो

यदि स्याद् गृहं वर्षमध्येऽन्यवश्यम् ॥१८२॥

भा० टी०—गृहारम्भ के दिनका नक्षत्र और गृह का नक्षत्र यदि गृह के द्वारकी दिशा का हो तो उस गृह में गृह बनानेवाला न रहे और द्वार के पीछे की दिशा का

ॐ वास्तुराजवल्लभे—

वास्तोः कर्मणि धिष्णवारतिथयोऽश्विन्युत्तराणां त्रिकम्

हस्तादित्रयमैत्रतो द्वयमिदं पुष्यो मृगो रोहिणी ।

निघ्नौ भूसुवभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दातिथिः

तेषां वैधृतिशूलपातपरिघ्न्याघातवज्रावपि ॥



हो तो मकान गिरजाय ( दोनों बगल का नक्षत्र श्रेष्ठ है । कु० रो० मृ० आ० पु० पु० आश्ले० अну० ज्ये० मू० पू० पा० उ० पा० अ० इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र के पिण्ड से जो गृह बनावे और रो० मृ० पुष्य अ० इन नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में गृहारम्भ किया हो वह उत्तर या दक्षिण मुख या उभय दिशि द्वार कर सकता है । म० पू० फा० उ० फा० ह० चि० स्वा० वि० ध० श० पू० भा० उ० भा० रे० अश्वि० भ० इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र का जिसका पिण्ड होय और उ० फा० ह० चि० स्वा० ध० श० उ० भा० रे० इन नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में गृहारम्भ किया होय, वह पूर्व या पश्चिम मुख या उभय मुख गृह में बाहर आने जाने के लिये द्वार बनावे । जिसका जिस दिशा में द्वार करने को लिखा है उसमें यदि यमांश होता हो या अन्य किसी प्रकार या अभीष्टवश अन्य दिशा में द्वार करने की इच्छा होय तो बना सकता है, परन्तु जिस दिशा में द्वार का निश्चय है उस दिशा में भी द्वार रहना चाहिये । अभाव में खिरकी या गवाक्ष होना उचित होगा ) यदि एक भी बलवान् ग्रह शत्रु के नवांश में प्राप्त होकर दशम व सप्तम स्थान में हो तो गृह एक वर्ष के भीतर दूसर के वश में हो जाय ॥ १८२ ॥

शम्भुभाषितम् गृहलक्षणम्—

गृहायलब्धऋक्षं च यत्र ऋक्षे च चन्द्रमाः ।

शलाकासप्तके देयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥ १८३ ॥

नामदक्षिणभागे तत्प्रशस्तं शान्तिकारकम् ।

अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः

ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते ॥ १८४ ॥

भा० टी०—गृह का नक्षत्र और गृहारम्भ का नक्षत्र जिस तरफ गृह का द्वार होय उसके कृत्तिकादि क्रमसे सप्तशलाका चक्र के क्रम से वाम या दक्षिण में शुभ तथा शान्तिकारक है । अपना कल्याण चाहनेवाला आगे पीछे के नक्षत्र में घर न बनावे । क्योंकि चन्द्रमा का तथा गृह का नक्षत्र द्वारके सन्मुख और पीछे श्रेष्ठ नहीं है ॥ १८३, १८४ ॥

श्रीपतिभाषितो गृहारम्भे विशिष्टकालीननिषेधः—

रवौ गृहस्थो गृहणी शशाङ्के

धनं सिते देवगुरौ च सौख्यम् ।

विनाशमायाति बलेन हीने

नीचस्थिते वास्तमुपागते वा ॥ १८५ ॥

भा० टी०—सूर्य चन्द्र गुरु शुक्र यदि बलहीन, नीच राशि में स्थित या अस्त होवें तो रवि गृहस्थ का, चन्द्रमा स्त्री का, शुक्र धनका और बृहस्पति सुखका नाश करता है ॥ १८५ ॥



रात्रौ वास्तुकृत्यम्-

ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम् ।

सूर्यारिवर्य्यदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥१८६॥

मध्याह्ने तु कृतं यत्तु कर्तुर्वास्तुविनाशदम् ।

निशीथे वाथवा सन्ध्योर्वास्तु वा नैव कारयेत् ॥१८७॥

भा० टी०-ध्रुव को देख कर आवा ध्रुवका स्मरण करके सूर्य तथा मंगल वार से भिन्न वारों में मध्य रात्रि को छोड़कर वास्तुरोपण [गृहारंभ] करे । मध्य दिन, मध्य रात्रि और दोनों संध्या में गृह बनाने से बनानेवाले का और गृह का नाश होता है ॥१८६॥१८७॥

रामभाषितानि नक्षत्रविशेषेषु सत्फलानि-

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसार्पजलैः सजीवै-

स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।

द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै-

र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥१८८॥

भा० टी०-पुष्य ध्रुवसंज्ञक [ ३० ३ रो० ] मृगशिरा श्रवण आश्लेषा पूर्वाषाढ इन नक्षत्रों में बृहस्पति जिस किसी में हो, उस नक्षत्र में बृहस्पतिवार के दिन गृह बनावे तो गृह बनानेवाले को पुत्र तथा राज्य [ विशेष लाभ ] होवे तथा विशाखा अश्विनी चित्रा धनिष्ठा शततारा आर्द्रा इनमें से जिसमें शुक्र हो उसी नक्षत्र में शुक्रवार के दिन गृहारंभ हो तो अन्न धन बहुत होवे ॥१८८॥

रामभाषित-असत्सत्फलानि-

सारः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजेहि वेश्याग्निसुतार्तिदं स्यात् ।

सज्ञैः कदास्त्रार्यमतच्छस्तैर्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥१८९॥

भा० टी०-हस्त पुष्य मघा पूर्वाषाढा रेवती मूल नक्षत्र मंगल से युक्त हो तथा मंगल वार भी हो तो गृह में अग्निपीडा तथा पुत्रपीडा होवे और रोहिणी अश्विनी उत्तरा फाल्गुनी चित्रा हस्त में से जिसमें बुध स्थित हो, उसी नक्षत्र में बुधवार के दिन गृहारंभ हो तो घर सुख तथा पुत्र का देनेवाला होवे ॥ १८९ ॥

नारदोक्तासद्दयोगः-

ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वमे ।

धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनौ तदिवसेतथा ॥१९०॥



कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे ।

पुत्रो जातोऽथवा तस्मिन् गृह्यते यक्षराक्षसैः ॥१६१॥

भा० टी०—ज्येष्ठा अनुराधा भरणी स्वाती पूर्वा भाद्रपद और धनिष्ठा में से जिसमें शनि होय और उक्त नक्षत्र तथा शनिवार भी हो तो वह गृह राक्षस तथा भूतों से युक्त रहे । जो लड़के हों वे मरजायें और धन रहने पर भी कृपण रहें ॥१६०॥१६१॥

रामसेवोक्तं गृहायुःफलम् ।

शुभेऽन्याष्टहीने खले त्र्यङ्गलाभे

गृहं द्विस्वभावस्थसूर्ये न कार्यम् ।

रविज्ञेज्यशुक्रार्किभिः शत्रुजाया—

तनूतूर्यदुश्चिक्क्ययातैः शतायुः ॥१६२॥

तथा च—

तृतीयारिधीलग्नगैः सूर्यभौमे—

ज्यशुक्रैः शते द्वे गृहायुः समायुः ।

गुरौ केन्द्रगे लाभकर्माङ्गसंस्थैः

रविज्ञेशनोभिः शतायुर्गृहं स्यात् ॥१९३॥

खलाभाभ्युलाभेषु चन्द्रास्तृगिज्या—

कपुत्रैः गृहायुः समा स्यादशीतिः ।

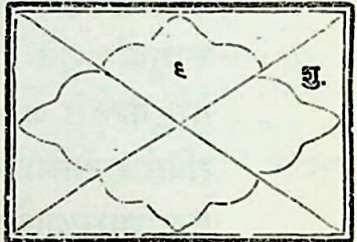
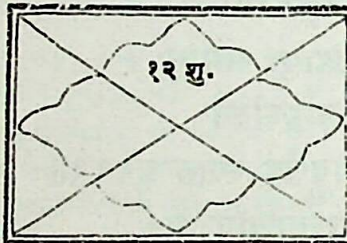
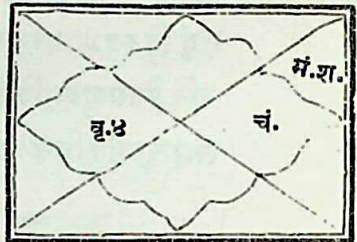
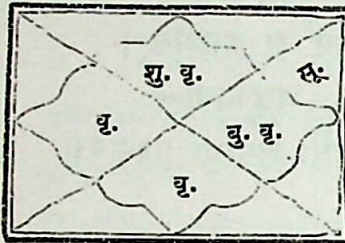
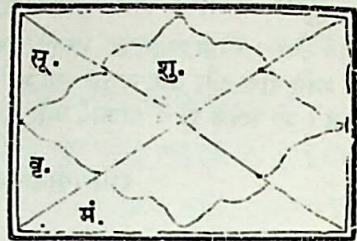
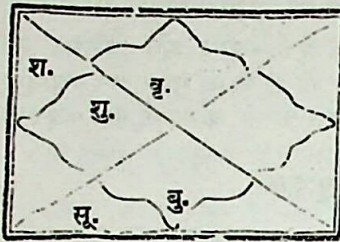
स्वतुङ्गस्थितो लग्नगः स्याद्भृगुर्वा

शनिर्लाभगः संपदाढ्यं गृहं स्यात् ॥१६४॥

भा० टी०—गृहारंभ के लग्न से शुभग्रह ८।१२ वें घरमें न होयें और पापग्रह ३।६।११ वें घरमें होयें तथा सूर्य द्विस्वभाव लग्न में न हो तो घर बनाना चाहिये । सूर्य छठों, बुध सप्तम, बृहस्पति लग्न, शुक्र चतुर्थ, शनि तीसरे गृहारंभ लग्न से होय तो १०० वर्ष, बृहस्पति पाँचवें होय और शुक्र लग्न में होय तो घर की आयु २०० वर्ष होवे । तथा गुरु केन्द्र में, रवि लाभ में, बुध कर्म में, शुक्र लग्न में होवे तो घरकी आयु १०० वर्ष की होवे । चन्द्रमा दशवे, मंगल एकादश में, गुरु चौथे और शनि एकादश में होय तो घर की आयु ८० वर्ष होवे । उच्च का शुक्र लग्न में होय या उच्च का शनि लाभ में



होय, [ या चतुर्थ भाव में उच्च का बृहस्पति होय ] तो वह घर बहुत धन से युक्त होकर बहुत काल तक रहे ॥१९२॥१९३॥१६४॥



वास्तुप्रदीपोक्तवास्तुकुण्डलीफलम् तत्रादौ लग्नफलम्—

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात् कोशहानिश्च शीतगौ ।

मृत्युर्विश्वम्भरापुत्रे दारिद्र्यं रविनन्दने ॥१६५॥

जीवे धर्मादिकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे ।

चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्द्धते ॥१६६॥

\* भृगुर्विलग्ने यदि मीनसंस्थः कर्कः गुरुस्तुर्यगृहं गतश्चेत् ।

यानिस्तथैकादशगस्तुलायां गेहं चिरं श्रीमहितं तदा स्यात् ॥

लग्ने कर्कटमाश्रिते हयकरे देवार्चिते केन्द्रगे ।

लक्ष्मीकृद्भवन् सार्गश्च सुहृदः स्वांशोच्चभागैस्तथा ॥



भा० टी०—गृहारंभ के लग्न में सूर्य हो तो विजुली गिरें, चन्द्रमा हो तो धन की हानि, मंगल हो तो मृत्यु, शनि होय तो दरिद्र, जीव हो तो धर्मादि काम, शुक्र हो तो पुत्र, बुध हो तो कुशल शक्ति और आयु की वृद्धि होय ॥१९५॥१६६॥

द्वितीयभावफलम्—

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत् ।

भूसुते बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नश्च भानुजे ॥१६७॥

बुधे द्रविणसम्पत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः ।

यथाकामं विनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥१६८॥

भा० टी०—धन भाव [ दूसरे स्थान ] में सूर्य हो तो धन की हानि, चन्द्र हो तो शत्रुका क्षय, मंगल हो तो बन्धन, शनि हो तो अनेक प्रकार का विघ्न, बुध हो तो धन-धान्य गुरु हो तो धर्मप्राप्ति और शुक्र हो तो आनन्द से समय बीते ॥१६७॥१६८॥

तृतीयभावफलम्—

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः ।

सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥१६९॥

भा० टी०—तृतीय भाव में शुभग्रह पापग्रह सब थोड़े ही दिन में मनोभिलषित सिद्धि को देते हैं, अर्थात् तीसरे सब ग्रह श्रेष्ठ हैं ॥१६९॥

चतुर्थभावफलम्—

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा सम्पद्यते क्रमात् ।

चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभश्च भार्गवे ॥२००॥

वियोगः सुहृदां भानौ मित्रभेदो धरासुते ।

बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभोऽर्कनन्दने ॥२०१॥

भा० टी०—चौथे स्थान में गुरु हो तो पूजन, बुध हो तो लाभ, शुक्र हो तो भूमि-लाभ, सूर्य हो तो मित्रों से वियोग, मंगल हो तो मित्रों से भेद, चन्द्रमा हो तो बुद्धि का नाश और शनि हो तो बड़ा भारी लाभ होय ॥२००॥२०१॥

पञ्चमभावफलम्—

पञ्चमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्तुधनागमः ।

शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिः हेमाभरणमिन्दुजे ॥२०२॥

सुतदुःखं सदा सूर्ये शशाङ्के कलहागमः ।

भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥२०३॥



भा० टी०-पञ्चम भाव में गुरु हो तो मित्र, वस्तु तथा धन का आगम, शुक्र हो तो पुत्र और धनकी प्राप्ति, बुध हो तो सुवर्ण के आभरण का लाभ, सूर्य हो तो पुत्र का कष्ट, चन्द्रमा हो तो कज्रह, मंगल हो तो कामविरोध और शनि हो तो काम का मर्दन होय ॥ २०२॥२०३॥

षष्ठभावफलम्-

षष्ठस्थाने गते सूर्ये पूजा संपदयते नृपात् ।

चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥२०४॥

गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत् ।

मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥२०५॥

भा० टी०-छठे भाव में सूर्य हो तो राजा से लाभ, चन्द्र हो तो पुष्टि, मंगल हो तो लाभ, शनि हो तो शत्रु के बलका क्षय, बृहस्पति हो तो धनलाभ, शुक्र हो तो विद्या का आगम, बुध हो तो मान और ज्ञान का कुशल होय ॥२०४॥२०५॥

सप्तमभावफलम्--

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते ।

गजवाजिधरित्रीणां क्रमाद् भोगं विनिर्दिशेत् ॥२०६॥

भास्करे कीर्तिभंगः स्यात् कुजे विग्रहमादिशेत् ।

चन्द्रमन्दयुते मान्दयं हीनांगत्वं भयं तथा ॥२०७॥

भा० टी०-लग्न से सप्तम बृहस्पति, बुध और शुक्र हों तो क्रमसे हाथी, घोड़ा, और भूमि भोग करने को मिले, सूर्य होय तो यश का नाश, मंगल हो तो विग्रह, चन्द्र शनि से युत हो तो हीन अंग और भय होय ॥ २०६॥२०७॥

अष्टमभावफलम्-

निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुतो विपदस्तदा ।

हानिश्शीतमयूषे च मङ्गले रविजे भयम् ॥ २०८ ॥

बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान् ।

शुक्रे स्वजनतो दद्यात् सुखं पुंसां विशेषतः ॥२०९॥

भा०-टी०-अष्टम स्थान में सूर्य हो तो शत्रु से विपत्ति, चन्द्रमा हो तो हानि, मंगल-शनि हो तो भय, बुध हो तो मान धनकी प्राप्ति बृहस्पति हो तो बड़ी विजय (जीत) और शुक्र हो तो मित्र से पुत्र को विशेष लाभ होता है ॥ २०८ ॥ २०९ ॥



नवमभावफलम्—

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्याभिवर्द्धनम् ।

बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत् ॥२१०॥

चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे ।

कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम् ॥ २११ ॥

भा० टी०—नवम भावमें बृहस्पति हो तो बुद्धि तथा भाग्य की वृद्धि, बुध हो तो विविध प्रकार के भोगों की प्राप्ति, शुक्र हो तो मन्द उदय, चन्द्रमा हो तो धातुक्षय, सूर्य हो तो धर्म की हानि, मंगल हो तो सामर्थ्य ( पुरुषार्थ ) की हानि और शनि हो तो काम का दोष होता है ॥ २१० ॥ २११ ॥

दशमभावफलम्—

दशमस्थानगे शुक्रे शयनाशनसिद्धयः ।

सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे ॥२१२॥

मार्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोशविवर्द्धनम् ।

भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलेपनम् ॥२१३॥

भा० टी०—दशम स्थान में शुक्र हो तो शयन भोजन के सामान की वृद्धि, बृहस्पति हो तो महासौख्य, बुध हो तो विजय, सूर्य तथा चन्द्रमा हो तो धन की वृद्धि और भौम हो तो बल, तथा शनि हो तो पुरुषों की कीर्ति होती है ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

एकादशद्वादशभावफलम्—

लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं फलम् ।

व्यये सर्वे सदैवदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः ॥२१४॥

भा० टी०—लाभभाव में सब ग्रहों का शुभ फल है और व्यय भाव में सब ग्रहों का उदासीन फल है ( १ ) ॥ २१४ ॥

१ तथा मातृप्रसादः—लग्नेऽर्केन्दुधरासूनुमन्दा मन्दफलप्रदाः । बुधेज्यकवयः सौम्य-फलदाश्च भवन्ति वै ॥ १ ॥ धने सूर्यमहीसूनुभानुपुत्रा न शोभनाः । शुकेन्दुचन्द्रजाः सौम्य-फलदाः प्रभवन्ति हि ॥२॥ तृतीये सौम्यफलदा ग्रहाः सर्वे, सुखे शुभाः । जीवज्जभार्गवा नेष्टाः कुजेन्दुरविभानुजाः ॥ ३ ॥ पञ्चमे भौमसूर्येन्दुसूर्यपुत्रा न शोभनाः । भवन्ति सौम्यफलदा बुधेज्यभृगुसूनुवः ॥ ४ ॥ षष्ठे सर्वे ग्रहाः सौम्याः सप्तमे ज्ञेयभार्गवाः । शुभा नेष्टा मही-सूनुर्विचन्द्रशनैश्चराः ॥ ५ ॥ नेष्टा रन्ध्रे ग्रहाः सर्वे केचित् शुकेज्यचन्द्रजाः । शुभाश्चो-क्ताश्च, नवमे शुभौ जीवबुधौ तथा ॥ ६ ॥ नेष्टाः शेषा ग्रहाः सर्वे, सर्वे वै दशमे शुभाः । लाभे लाभप्रदाः सर्वे व्यये ह्यशुभकारकाः ॥ ७ ॥



खननस्थाननिर्णयः—

वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः ।

आयुःकामः खनेनैव वामकुक्षौ खनिः शुभा ॥२१५॥

भा० टी०—वास्तु के शिर, पुच्छ, याम्यकुक्षि और पृष्ठभाग में आयुःकामना-  
वाले मनुष्य खातके निमित्त न खने । वाम कुक्षि में खात शभ होता है ॥ २१५ ॥

तत्रैव छल्लः—

त्यजेद् दश शिरोभागे ह्यग्रे सप्तदशांशकान् ।

मध्ये नाभिं विजानीयात् तत्र शंकुं निवेशयेत् ॥ २१६ ॥

अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद् गणयेत् करैः ।

दैर्घ्यं वा विस्तृतिं चैव कृत्वाष्टाश्विमितांशकान् ॥२१७॥

भा० टी०—वास्तु पुरुष के अंग में २८ भाग करे, १० भाग शिर के तरफ और  
१७ भाग पुच्छ के तरफ त्याग दे । मध्य ( जो शिर के तरफ, ११ वॉ हो और पुच्छ  
की तरफ से १८ वॉ हो उस जगह ) [ १ ] शंकुन्यास करे ॥२१६॥२१७॥

सवेदास्तिथये। द्विध्ना नामाक्षरसमन्विताः ।

त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषः पुरुष उच्यते ॥ २१८ ॥

एके च वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।

शून्ये तु मृत्युलोके स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२१९॥

स्वर्गे वासे भवेत्लाभः पातालेषु श्रियः सदा ।

मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत् ॥ २२० ॥

१ स्याच्चतुर्विंशविंशष्टिद्वादशांगुलकैः क्रमात् ।

विप्रादीनां शंकुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम् ॥ १ ॥

खदिरार्जुनशालोत्थयुगपत्रतरुद्भवम् ।

रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम् ॥ २ ॥

निम्बकारज्जकुटजं वैष्णवं विल्ववृक्षकम्

शंकुं त्रिधा विभज्यादौ चतुरस्रं ततः परम् ॥ ३ ॥

अष्टास्रं च तृतीयांशमनस्रं मृजुवर्णकम् ॥

एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिने ॥ ४ ॥

भा० टी०—ब्राह्मणादि चारों वर्ण २४।२०।१६।१२ अंगुल का शंकु बनाकर उसकी सुवर्ण  
वज्रादि से शोभित करे और शंकु खदिर, अर्जुन, शाल, निम्ब, करंज, कुटज तथा विल्व वृक्षमें  
से ही किसीका होना समुचित है । शंकुमें तीन भाग करके चतुरस्र अष्टकोण और गोल रहै,  
ऋतुर्गण ( सीधा ) इन लक्षणों से युक्त शुभ दिन में शंकुनिर्माण करे ।



भा० टी०—तिथि में ४ युत करके उसको दूना करे, फिर उसमें नाम का अक्षर मिला कर ३ का भाग देय, १ शेष में स्वर्ग, २ शेष में पाताल, शून्य शेष में मर्त्यलोक में वास्तुपुरुष का वास रहता है, यह पाराशरजी ने कहा है । स्वर्ग में लाभ, पाताल में सदा लक्ष्मीप्राप्ति और मर्त्यलोक में वास्तु पुरुष के रहने से मृत्यु होती है । इन बातों को विचार करके गृहारम्भ करै ॥२१८॥२१९॥२२०॥

कूर्मचक्रं ज्योतिषशास्त्रे—

तिथिस्तु पञ्चगुणिता कृत्तिकाद्यक्षसंयुता ।

तथा द्वादशमिश्रा च नवमांकेन भाजिता ॥२२१॥

जले वेदा मुनिश्चन्द्रःस्थले पञ्च द्वयं वसु ।

त्रिषष्ठनव चाकाशे त्रिविधं कूर्मलक्षणम् ॥२२२॥

जले लाभस्तथा प्रोक्तः स्थले हानिस्तथैव च ।

आकाशे मरणं प्रोक्तमिदं कूर्मस्य लक्षणम् ॥२२३॥

भा० टी०—गृहारम्भ की तिथि को ५ से गुणा करके उसमें कृत्तिकादि से लेकर वर्तमान नक्षत्र को जोड़ै । उसमें १२ और युक्त करके ६ का भाग देय, यदि शेष ४।७।१ वचै तो जल में, ५।२।८ शेष वचै तो स्थल में और ३।६।९ शेष वचै तो आकाशमें कूर्म वास जानै । जल में रहने से लाभ, स्थल में रहने से हानि और आकाश में रहने से मरण होता है, यही कूर्मचक्र है ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

( गृहारम्भोक्त मासादि का विचार कर पंचांगशुद्धि और लग्नशुद्धि का विचार करके गृहारम्भ विधि के अनुसार शिलान्यास करके मकान उठावे । शिलान्यास किसी के मतसे [ १ ] अग्निकोण में लिखा है । किसी ने राहु को [ २ ] पृष्ठदिशामें लिखा है । किसी के मतसे [ ३ ] ईशानादि चतुष्कोणमें और मध्यमें लिखा है । देवालयमें [ ४ ] अग्निकोणादि चतुष्कोण में लिखा है, सबका प्रमाण मित्रता है । मेरे विचार से राहुके पृष्ठभागमें ही गृह में शिलान्यास उचित है अधिकांश होता भी यही है परन्तु किला और वाटिकामें ईशानादि चतुष्कोण में और मध्यमें शिलान्यास उचित है और देवालय में अग्नि आदि चतुष्कोणमें शिलान्यास करना चाहिए । )

रामोक्तं दिक्षु कूपवासफलम्—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्धनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।

१ सूत्रभित्तिशिलान्यासःस्तम्भस्यारोपणं तथा ।

पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥

२ देवल० वास्तु पृ० २२ श्लो० ८७ ।

३ गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः ।

ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥ विश्व० अ० ५ श्लोक २०५

तथा अ० १२ श्लोक ४३-४४

४ नन्दा भद्रा जया पूर्णा आरनेयादिषु विन्यसेत् ।

चतुःषष्टिपदं वास्तु प्रासादादिषु विन्यसेदिति ॥

विश्वकर्माप्रकाशे अ० ६ श्लो० १३



**सूनोर्नाशःस्त्रीविनाशो मृत्तिश्चसम्पत्पीडाशत्रुतः स्याच्च सौख्यम्**

भा० टी०-(१)कूप [कुआँ] घर के मध्य में अर्थ नाश करनेवाला और ईशानादि में पुष्ट्यादि अर्थात् ईशान में पुष्टि, पूर्व में धनवृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैऋत्य में गृहेशकी मृत्यु, पश्चिम में धन, वायव्य में शत्रु से पीड़ा और उत्तर में सुख होता है ॥ २२४ ॥

दिशा	गृहमध्य	ईशान	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर
फल	अर्थनाश	पुष्टि	ऐश्वर्य	पुत्रनाश	स्त्रीनाश	गृहेशना.	धन	शत्रुपीडा	सुख

**गृहाणां दिक्परत्वेन करणम्-**

**स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजश्च धान्य-**

**भाण्डारदेवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ।**

**तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्या-**

**भ्यासाख्यरोदनरतौषधिसर्वधाम ॥ २२५ ॥**

भा० टी०-चतुरस्र घर के पूर्व में स्नान का, आग्नेय कोण में रसोई का, दक्षिण में

देवता	स.धा.	स्नान	मथन	रसोई
औष.				घृत
भंडार				शयन
रत				पाखाना
धान्य	रोदन	भोजन	विद्या	अस्त्र
			भ्यासा	

शयन का, नैऋत्य में (शस्त्र) हथियारों का, पश्चिम में भोजन का, वायव्य में अन्न का, उत्तर में धन का, ईशान में देवता का घर बनाना शुभ है । अथ दिशा विदिशाओं के मध्य में कहते हैं । पूर्वाग्नेय के बीच में दही मथने का, आग्नेय दक्षिण के मध्य में घृत का, दक्षिण नैऋत्य के मध्य पाखाना का, नैऋत्यपश्चिम के मध्य पाठशाला का, पश्चिम वायव्य के मध्य रोदन का, वायव्य उत्तर के मध्य स्त्री संभोगका, उत्तर ईशान के मध्य औषधी का, ईशान पूर्व के मध्य में

अन्य सभी वस्तुओं का स्थान बनाना चाहिए ॥ २२५ ॥

**तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधः-**

**पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरस्यां त्वथ पश्चिमास्यम् ।**

**दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति ॥ २२६ ॥**

भ.० टी०-पूर्णिमासी से कृष्णाष्टमीपर्यन्त पूर्वमुख का घर न बनाया जाय, ९ से १४ तक उत्तर मुख न करना, अमावस्या से शुक्लपक्षकी अष्टमी पर्यन्त पश्चिममुख शुभ नहीं होता, शुक्लपक्ष की नवमी से चतुर्दशीपर्यन्त दक्षिणमुख शुभ नहीं होता है २२६

१ गृह के भीतर कूप बनाने का यह फल है-गृह के बाहर आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य कोण को छोड़ अन्य दिशा में बनावे । गोप दकार्गलप्रकरण में देखो ।



पूर्वादिचतुर्दिक्षु द्वारनिवेशेन फलान्याह वाराहमिहिरः-

अनलभयं स्त्रीजन्यं प्रभूतधनता नरेन्द्रतो लब्धिः ।

क्रोधाधिकत्वमनृतं क्रौर्यं चौर्यं क्रमात् पूर्वं ॥२२७॥

अल्पसुतत्वं प्रेक्ष्यं नीचत्वं भक्षपानसुतलब्धिः ।

रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नश्च याम्येन ॥२२८॥

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्धनपुत्राप्तिस्समस्तगुणसम्पत् ।

धनलाभो नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥२२९॥

वधबन्धौ रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत् ।

पुत्रधनासिर्वैरं सुतकृतदोषः स्त्रियो नैःस्वम् ॥२३०॥

भा० टी०-इन चार पद्यों का भावार्थ चक्र से स्पष्ट मालूम पड़ेगा ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

॥ २२९ ॥ २३० ॥

	अग्निभय	स्त्रीजन्य	धनवृद्धि	नृपलाभ	क्रोधाधिकत्व	असत्य	क्रूरत्व	चोरभय
स्त्रीधनहानि	अ.			प.				अ.
सुतकृतदोष								अपुत्रता
वैर								प्रेक्ष्यत्व
पुत्रधनप्राप्ति								नीचत्व
सर्वगुणलाभ	उ.							भक्षपानसुतवृद्धि
धनपुत्रलाभ								रौद्र
शत्रुवृद्धि								कृतघ्नता
वधबन्धन	वा.			प.				अधनता
								पुत्रबलनाश
	रोगवृद्धि	धनक्षय	नृपतिभय	धनलाभ	महद्वैरवय	पुत्रार्थलाभ	रिपुवृद्धि	पुत्रादिपीडा







अन्यः—

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्र सव्याद्  
द्वारं शुभं प्राक्त्रिचतुर्थभागे ।  
चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां  
पश्चाच्चतुःपञ्चमके तथोदक् ॥ २३५ ॥

भा० टी०—[ब्राह्ममिहिराचार्य और शंकरने चारों दिशाओं में आठ २ भागों में दर्शाया है । सो ऊपर लिख दिया है ] अब इस पद्य में लिखते हैं कि गृह के नौ भाग करे, वाम भाग से यदि पूर्व मुख द्वार करना होय तो तीसरे या चौथे भाग में, दक्षिण मुख द्वार करना होय तो चौथे या छठे भाग में, पश्चिम तथा उत्तर द्वार बनाना हो तो चौथे या पाँचवे भाग में द्वार बनावे ॥ २३५ ॥

तथा नारायणः—

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाःसव्यतोऽङ्कोदधृते  
दैर्घ्ये द्वांशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षुदिता ।

भा० टी०—गृह के दीर्घ या विस्तार के ९ भाग करके पूर्व मुख गृह बनाना हो तो दो अंश छोड़ तीसरे अंश में द्वार करना, दक्षिण मुख करना हो तो पाँच अंश छोड़ छठे अंश में, पश्चिम तथा उत्तर मुख करना हो तो चार अंश छोड़ पाँचवे अंश में द्वार करना अथवा चारों दिशाओं के चौथे भाग में द्वार करना, किन्तु द्वार की उँचाई द्विगुणित भाग के तुल्य करना चाहिये ॥

तथा वास्तप्रदीपे—

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे ।  
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥ २३६ ॥

भा० टी०—जिस दिशा में द्वार बनाना हो, विस्तार या दीर्घ से उसको नौ भाग करे । पाँच भाग दक्षिण तरफ [ दाहिने ] और तीन भाग उत्तर भाग में छोड़कर शेष भाग में द्वार बनावे ॥ २३६ ॥

वास्तराजवल्ग्वे—

दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निःसृते सति ।  
यो भूयादक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामगः ॥ २३७ ॥

भा० टी०—दक्षिण और वाम अंग उसको मानना चाहिये, जो मन्दिर [ गृह ] से निकलते ही दक्षिण भाग में हो वह दक्षिण, जो वाम भाग में हो वह वाम भाग



समके, [ देश में प्रायः इस श्लोक के विपरीत देखने में आता है वह यदि मुहूर्तमा-  
र्तण्डकार और बराहमिहिर के वचन से भी न मिले तो अज्ञान का कारण जानना चाहिये ] २३७

रामोक्तं द्वारचक्रं तत्फलञ्च—

सूर्यर्चाद् युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-  
र्नागैरुदसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत् ।

देहल्यां गुणभैर्मुक्तिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः

सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥ २३८ ॥

भा० टी०—इस कपाटचक्र में सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिने ४  
नक्षत्र शिर पर लक्ष्मी प्राप्ति काते हैं एवं चारो कोण में ८ नक्षत्र उदसन करते हैं  
[ घर में कोई नहीं रहने पाते ] फिर ८ नक्षत्र शाखा में शुभ, फिर ३ नक्षत्र देहली में  
गृह के मालिक की मृत्यु और ४ मध्य में सौख्य फल देनेवाले हैं ॥ २३८ ॥

तथा मुहूर्तकल्पद्रुमे—

सूर्यर्चाद्युगनागाष्टगुणवेदैश्शुभाशुभम् ।

शिरःकोणद्वारशाखादेहलीमध्यगैः क्रमात् ॥ २३९ ॥

अश्विन्यामुत्तरास्वेवं पुष्यश्रुतिमृगेषु च ।

रोहिण्यां स्वातिभेज्ये च द्वारशाखां प्ररोपयेत् ॥ २४० ॥

भा० टी०—सूर्य के नक्षत्र से ४ शुभ, ८ अशुभ, ८ शुभ ३ अशुभ हैं । ४ नक्षत्र  
शिर में, आठ कोण में, आठ द्वारशाखा में, चार मध्य में यह क्रम से जाने । अश्विनी,  
तीनों उत्तरा, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती, रेवती नक्षत्र में द्वारशाखा [ केवाड ]  
लगावे ॥ २३९ ॥ २४० ॥

शुभा द्वारशाखान्त्यमैत्रेज्यशाके

करे दक्षचित्रानिले चादितौ च ।

गुरौ चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे

तिथौ नन्दिकापूर्णसंज्ञाजयाख्ये ॥ २४१ ॥

भा० टी०—रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु नक्षत्र  
में गुरु, चन्द्र, शुक्र-सूर्य और बुधवार में नन्दा [ १६११ ] पूर्णा [ ५११०१५ ] जया  
[ ३८१३ ] तिथि में द्वारशाखारोपण शुभ होता है ॥ २४१ ॥



वराहमिहिरोक्तवृषादीनां पञ्च पञ्च गृहाण्याह तत्रादौ राजगृहमाह—

उत्तममष्टाभ्यधकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन ।

अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादान दैर्घ्येण ॥ २४२ ॥

भा० टी०—उत्तम राजगृह में १०८ हाथ का विस्तार प्रधान है । इसके बाद चार गृह में आठ २ हाथ कम विस्तार करे और विस्तार से सवाई दीर्घ होना चाहिये ।

उदाहरण—प्रधान गृह का १०८ हाथ विस्तार है और दीर्घ १३५ हाथ, इसी प्रकार द्वितीय गृह का विस्तार १०० हाथ, १२५ हाथ दीर्घ, तृतीय गृह का विस्तार ६२ हाथ, दीर्घ ११५ हाथ, चतुर्थ गृह का विस्तार ८४ हाथ, दीर्घ १०५ हाथ, पंचम गृह का विस्तार ७६ हाथ और दीर्घ ८५ हाथ बनाना चाहिये ॥ २४२ ॥

सेनापतिगृहप्रमाणमाह—

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः ।

एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्वितं दैर्घ्यम् ॥ २४३ ॥

भा० टी०—सेनापति के प्रथम गृह का विस्तार ६४ हाथ का बनावे । बाद के चार गृहों में छः छः हाथ कम करके विस्तार बनाना चाहिये और विस्तार से षष्ठांश अधिक दीर्घ बनावे ॥ २४३ ॥

उदाहरण के लिये एक चक्र है वह दैवज्ञादि के गृह के नीचे है उससे स्पष्ट विदित होजायगा ।

सचिवराजमहिषीगृहाण्याह—

षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीनानि वेश्मानि पञ्च सचिवस्य ।

स्वाष्टांशयुतं दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ २४४ ॥

भा० टी०—मन्त्री का गृह भी पाँच है । पहले गृह का विस्तार ६० हाथ है । बाद के चार मकान चार २ हाथ कम करके बनावे । विस्तार का अष्टांश विस्तार में युक्त करके दीर्घ बनावे । पटरानी ( प्रधान स्त्री ) का गृह सचिव के आधे दीर्घ विस्तार के प्रमाण बनाना चाहिये ॥ २४४ ॥

युवराजतदनुजगृहाण्याह—

षड्भिः षड्भश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः ।

त्र्यंशान्वितं च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धेस्तदनुजानाम् ॥ २४५ ॥



भा० टी०—युवराज के भी पाँच प्रकार गृह हैं। जिनमें प्रथम गृहका विस्तार ८० हाथ होना चाहिये। बाद के चार मकानों में छः छः हाथ कम करके विस्तार की कल्पना करै और विस्तार के तृतीय अंश को विस्तार में युक्त करके दीर्घ की कल्पना करनी चाहिये और युवराज के छोटे भाई का गृह युवराज के गृह के आधे नाप का बनावे ॥ २४५ ॥

सामन्तप्रवरराजपुरुषकञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानां गृहलक्षणमाह—

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।

नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ २४६ ॥

भा० टी०—राजा का पाँच गृह और मन्त्री के पाँच गृह का जो अन्तर हो, उस क्रम से मांडलिक राजा और प्रधान पुरुष का गृह बनाना चाहिये। राजा और युवराज के गृह का जो अन्तर हो उसके सदृश कञ्चुकी और वेश्या का गृह बनाना चाहिये ॥ २४६ ॥

अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषां कोशरतितु \* ल्यम् ।

युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥ २४७ ॥

भा० टी०—सम्पूर्ण अधिकारियों का गृह कोश तथा रतिगृह के समान बनाना चाहिये अर्थात् जितने दीर्घ विस्तार का कोशगृह या रतिगृह हो उतने ही दीर्घ विस्तार का बनावे और युवराज तथा मन्त्री के गृह के अन्तर के सदृश कर्मशाला में जो मालिक दो उसका और दूतों ( कर्मचारियों ) का घर बनावे ॥ २४७ ॥

दैवज्ञपुरोहितभिषजां गृहप्रमाणमाह—

चत्वारिंशद्वीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति ।

षड्भागयुतं दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥ २४८ ॥

भा० टी०—ज्योतिषी पुरोहित तथा वैद्यों के गृह बनाने में प्रथम गृह का विस्तार ४० हाथ, फिर चार २ हाथ कम विस्तार करे तथा प्रत्येक गृह के विस्तार में उसी का षष्ठांश युत करने से दीर्घ होता है ॥ २४८ ॥



ज्ञातयः	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	प्रमाण
राज्ञः	१०८	०	१००	०	६२	०	८४	०	७६	०	विस्तार
	१३५	०	१२५	०	११५	०	१०५	०	९५	०	दीर्घ
सेना-	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०	विस्तार
पत्युः	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६	दीर्घ
मन्त्रि-	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०	विस्तार
गाः	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२	दीर्घ
राजमहि-	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	विस्तार
धीणां	३३	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१२	दीर्घ
युवरा-	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६	०	विस्तार
जस्य	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	१६	दीर्घ
युवराजा-	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०	विस्तार
ऽनुजस्य	५३	८	४९	८	४५	८	४१	८	३७	८	दीर्घ
साम-	४८	०	४४	०	४०	०	३६	०	३२	०	विस्तार
न्तस्य	६७	१२	६२	०	५६	१२	५१	०	४५	१२	दीर्घ
कञ्चुकि-	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	२०	०	विस्तार
वेश्याक-	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दीर्घ
जाज्ञानाम्	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दीर्घ
कर्मा-	२०	०	१८	०	१६	०	१४	०	१२	०	विस्तार
ध्यक्षस्य	३९	४	३५	१६	३२	४	२८	१६	२५	४	दीर्घ
ज्योतिषि-	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
पुरोहित-	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दीर्घ
वैद्यानां	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दीर्घ

वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रयः शुभदः ।

शालेकैषु गृहेष्वपि विस्ताराद्द्विगुणितं दैर्घ्यम् ॥ २४६ ॥



भा० टी०—चौबगल गृह रहनेवाली शाला (हवेलियों) में जो विस्तार हो, उतनी ही उसकी ऊँचाई होनी चाहिये और गृहों में विस्तार से दूना २ दीर्घ होना शुभदायक है २४९

चातुर्वर्ण्य्यासो द्वात्रिंशत्स्याच्चतुश्चतुर्हीनाः ।

आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम् ॥ २५० ॥

सदशांशं विप्राणां चतुरस्याष्टांशयुतं दैर्घ्यम् ।

षड्भागयुतं वश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ २५१ ॥

भा० टी०—ब्राह्मणादि चारों वर्णों के गृहों का विस्तार क्रमसे ३२, २०, १६, १२ हाथ उत्तम, उसमें चार २ हाथ कम ऐसा १६ हाथ तक गृह की चौड़ाई होय, इससे कम चाड़ाई का गृह नीच जाति का होता है । ब्राह्मण के गृह का दीर्घ विस्तार सदशांश अधिक होता है क्षत्रिय का अष्टमांश, वैश्य का षष्ठांश और शूद्र का चतुर्थांश अधिक होता है ॥ २५० ॥ २५१ ॥

नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने ।

सेनापतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ २५२ ॥

भा० टी०—राजा और सेनापति के गृह के अन्तर प्रमाण का कोश (खजाना) का और रति (आनन्द) का गृह बनवे तथा सेनापति और चातुर्वर्ण्य के गृह के अन्तर के तुल्य राजपुरुषों का गृह होना शुभ है ॥ २५२ ॥

वर्णः	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	हस्त	अंगुल	प्रमाण
ब्राह्मणस्य	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	विस्तार
	३५	५	३०	१६	२६	१०	२२	०	१७	१४	दीर्घ
क्षत्रियस्य	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	विस्तार
	३१	१२	२७	०	२२	१२	१८	०	×	×	दीर्घ
वैश्यस्य	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	×	×	विस्तार
	२८	०	२३	८	१८	१६	×	×	×	×	दीर्घ
शूद्रस्य	२०	०	१६	०	×	×	×	×	×	×	विस्तार
	२५	०	२०	०	×	×	×	×	×	×	दीर्घ
कोशरति-	४४	०	४२	०	४०	०	३८	०	३६	०	विस्तार
भवनस्य	६०	८	५७	८	५४	८	५१	८	४८	८	दीर्घ
राज	३२	०	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	विस्तार
पुरुषाणाम्	३९	११	३६	२१	३४	६	३१	१६	२६	२	दीर्घ



पार वसादीनां तु स्वमानसंयोगदलसमं भवनम् ।

हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वस्तु सर्वेषाम् ॥ २५३ ॥

भा०टी०-पारवस ( ब्राह्मण द्वारा शूद्रों के गर्भ से उत्पन्न चांडाल पुत्र ) आदि जाति शंकर के लिए माता पिता के वर्णोंका जो गृहमान हो उसको ऐश्वर्य करके आधा करने पर जो होय वही मान होता है वह राजा से लेकर पारवस पर्यन्तका गृहमान कहा है । इससे न्यून अधिक मानवाला गृह सबको अशुभ है ॥ २५३ ॥

अन्याश्रमिणाममितं धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च ।

नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ॥ २५४ ॥

भा० टी०-संन्यासी का और धान्यगृह, आयुष्यगृह, अग्निगृह तथा क्रीडागृह अपरिमित ( बिना परिमाण ) बनावे । वास्तु शास्त्रकार सौ हाथ से अधिक ऊँचा गृह बनाने की आज्ञा नहीं देते हैं ॥ २५४ ॥

सेनापतिनृपतीनां सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे ।

शालाचतुर्दशहते पञ्चत्रिंशद्भृतेऽल्लिन्दः ॥ २५५ ॥

भा० टी०-सेनापति राजा आदि \* के गृह की चौड़ाई में ७० मिलादे फिर उसको दो जगह धरे । एक जगह १४ का भाग लेनेसे शाला की चौड़ाई और दूसरी जगह ३५ का भाग लेने से अल्लिन्द की चौड़ाई होती है ॥ २५५ ॥

वदाहरण-राजा के उत्तम गृह की चौड़ाई १०८ हाथ है । उसमें ७० मिलाया तो १७८ हुआ । इसे दो जगह धरा । एक जगह १७८ में १४ का भाग लिया । लब्ध १२ हाथ ७ अंगुल १ जब मिला, यह शाला ( घर ) की चौड़ाई हुई, दूसरी जगह १७८ में ३५ का भागलेने से लब्ध ५ हाथ २ अंगुल मिला, यह अल्लिन्द ( बरामदा या बोसारकी ) चौड़ाई हुई, इसी प्रकार और भी जानो ।

हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुश्चतुस्त्रिंशद्विकं शालाः ।

सप्तदशत्रितयतिथित्रयोदशकृताङ्गुलाभ्यधिकाः ॥ २५६ ॥

त्रिन्निर्दिष्टद्विसमाक्षयक्रमादङ्गुलानि चैतेषाम् ।

व्येकाविंशतिरष्टौ विंशतिरष्टादशत्रितयम् ॥ २५७ ॥

भा० टी०-ब्राह्मणादि चारों वर्णों के ३२ हाथ इत्यादि चौड़ाई के पाँच गृह में क्रम से ३३, ३३, ३३ हाथ और क्रमसे १७, ३३, १५, १३, १३ अंगुल की शाला होती है, उसी प्रकार ३२ हाथ इत्यादि चौड़ाई गृह का ३३, ३३, ३२ हाथ और क्रम से १६, २०, १८, ३ अंगुल का अल्लिन्द ( बरामदा या बोसारा ) बनावे । ( ३२ हाथ के घर का ४ हाथ १७ अंगुल शाला और ३ हाथ १९ अंगुल अल्लिन्द बनावे ) ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

शालात्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका भवनात् ।

यद्यग्रतो भवति सा सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥ २५८ ॥



सायाश्रयामिति पश्चाच्छावष्टंभं तु पार्श्वस्थितया ।

सुस्थितमिति च समन्ताच्छास्त्रज्ञैः पूजिताः सर्वाः ॥२५६॥

भा० टी०—शाला के तीन भाग के समान बाहर का मार्ग करे वह पूर्व हो तो "सोष्णीष" नामका और पश्चिम में "सायाश्रयनाम" और चारो वाजू में होय तो "सुस्थित" नामक वास्तु होता है । यह सब बोधिकायें वास्तुशास्त्रज्ञों द्वारा कही गई हैं ॥२५८॥२५९॥

गोशालायाभश्वादिशालायां च भूशोधनादिकं पूर्ववज्ज्ञेयम् । तत्रापि चरणीविचारः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।

वसुभिस्तु हरेद्भागं शेषं चरणिरुच्यते ॥ २६० ॥

पशुहानिः पशोर्नाशः पशुलाभः पशुक्षयः ।

पशुरोगः पशोर्वृद्धिः पशुभेदो बहुः पशुः ॥ २६१ ॥

भा० टी०—स्वामी के हस्तप्रमाण से दीर्घ विस्तार को एक जगह जोड़े । फिर उसमें ८ का भाग देने से शेष चरणों का फल है । १ शेष में पशुहानि, २ शेष में पशुनाश, ३ शेष में पशुलाभ, ४ शेष में पशुक्षय, ५ शेष में पशुरोग, ६ शेष में पशुवृद्धि, ७ शेष में पशुभेद और ८ शेष में बहुत पशु यह फल है ॥ २६० ॥ २६१ ॥

उदाहरण—चौड़ा ३ हाथ, लम्बा ५ है, इसको एक जगह जोड़ा तो ८ हुआ, इसमें ८ का भाग देने से शून्य शेष होता है । अतः भाजक के अनुकूल शेष ८ माना गया तो फल आठवेंका बहुपशु है ।

अश्वगृहनिर्माणं वास्तुराजवल्लभे—

तुरंगमाणां गृहवामभागे शाला चतुःषष्टिकरा विधेया ।

शतार्धतो मध्यमिका च दीर्घे कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना ॥२६२॥

व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशभिः क्रमेण ।

तद्वाह्यभित्तिश्च करप्रमाणा पंचार्धपञ्चाब्धिकरोदयं स्यात् २६३

भा० टी०—गृह के वाम भाग में उत्तम अश्वशाला ६४ हाथ, मध्यम ५० हाथ, कनिष्ठ ४० की लम्बाई और उत्तम १५ हाथ, मध्यम १३ हाथ, कनिष्ठ ११ हाथ चौड़ाई की अश्वशाला अच्छी होती है । इनके बाहरी भीत की चौड़ाई उत्तम गृह की ५॥ हाथ, मध्यम की ५ हाथ, कनिष्ठ की ४ हाथ होनी चाहिये ॥ २६२ ॥ २६३ ॥

अश्वस्थितिः—

तेजोहानिममीहया विदधते पूर्वापरास्या नृणाम्

ते याम्योत्तरतो मुखा हि सततं कीर्तिर्यशो धान्यकम् ।



कर्तव्यो हिषणं प्रतीहकलशः स्थानं द्विहस्तोदयम्  
तस्या तोरणमुच्छ्रितं च मुनिभिर्हस्तैः सुशोभान्वितम् ॥२६४॥

भा०टी०—पूर्व पच्छिम मुख घोड़ा बाँधने से तेजकी हानि होती है । दक्षिण अथवा उत्तर मुख बाँधने से कीर्ति, यश और धान्य की वृद्धि करते हैं, घोड़ेके रहनेकी जगह कलश बनाना चाहिये । जहाँ घोड़ा बाँधा जाय, वह जगह दो हाथ ऊँची आगे की ओर करी उसमें तोरण ७ हाथ ऊँचा और शोभायुक्त होना चाहिये ॥ २६४ ॥

अश्वमानम्—

षष्ठ्या साधु ह्योऽङ्गुलैर्निगदितो वेदाङ्गुलेनाधिकः  
श्रीवत्सस्त्वहिलाद एव च मनोहारी द्विसप्ताङ्गुलैः ।  
रागाद्रथङ्गुलकैस्तु वाजिविजयोऽशीत्या तथा वैभवः

शान्ताख्यस्तु युगाष्टमात्र उदये मानं हरेः सप्तधा ॥२६५॥

भा० टी०—सात प्रकार के घोड़े होते हैं, ६० अंगुल का साधु, ६४ अंगुल का श्रीवत्स, ६८ अंगुल का अहिलाद, ७२ अंगुल का मनोहारि, ७६ अंगुल का विजय, ८० अंगुल का वैभव और जो ८४ अंगुल ऊँचा हो उसको शान्त कहते हैं । ( साधु घोड़ा ५ वित्ते का होता है इसके बाद जो श्रीवत्स आदि हैं वे एक से चार २ अंगुल बढ़े होते हुए अन्त्य में शान्त ७ वित्ते तक के होते हैं ) ॥ २६५ ॥

गजगृहनिर्माणं तत्रादौ कर्तव्यता—

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्वये का वा मालिकास्तस्य शोर्षे ।  
स्यातां मध्ये तोडकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागेनाधिकौ रक्षणार्थम् ॥२६६॥

भा०टी०—सिंहद्वार ( सदरफाटक ) पूर्व कथनानुसार बनावे, उसके शिरपर तीन दो या एक मालिका ( मंजिला ) बनावे, बीच में काष्ठ का अर्गला बनावे । दोनों समान हो वा कमवेश मोटाई चौड़ाई में हो, सभी प्रकार का बनाया जा सकता है ॥ २६६ ॥

भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेर्द्वारतः

कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिता ।

संकीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टभिः

सर्वेषूत्तमभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः ॥ २६७ ॥

भा० टी०—सदरफाटक के दक्षिण और वाम भाग में गजशाला (हयिसार) बनावे, वह ऊँचा और घण्टा कलश आदि से युक्त हो, संकीर्ण हाथी ६ हाथ ऊँचा, मन्द ७ हाथ ऊँचा, मृग ८ हाथ ऊँचा और सर्वसे श्रेष्ठ भद्रजाति का हाथी ९ हाथ ऊँचा होता है ॥ २६७ ॥

गृहादिनिर्माणार्थमिष्टिकानिर्माणम्—

विजया मंगला चैव निर्मला सुखदेति च ।



चतुर्द्धा चेष्टिका प्रोक्ता गृहे च वरुणालये ॥ २६८ ॥

तिथ्यङ्गुलीभिर्विजया मङ्गला सप्तभूमिभिः ॥

पद्मेन्दुभिर्निर्मला स्यात्सुखदा रामबाहुभिः ।

प्रमाणमिष्टिकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतम् ॥ २६९ ॥

भा० टी०—गृह और कूप आदि जलाशय के लिये विजया, मंगला, निर्मला, सुखदा ये चार प्रकार की ईंटें कड़ी गई हैं । १५ अंगुल की विजया, १७ अंगुल की मंगला, १२ अंगुल की निर्मला, २३ अंगुल की सुखदा इष्टिका का प्रमाण गर्गादि ऋषियो ने कहे हैं ॥ २६८ ॥

इष्टिकारम्भचक्रम्—

पञ्च त्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनेयभात् ।

सौख्यं मृत्युं क्रमेणैवमिष्टिकारम्भकर्मसु ॥ २७० ॥

भा० टी०—मंगल के नक्षत्र से इष्टिकारम्भ का शुभाशुभ चक्र इस प्रकार है, ५-३-३-५-७-५ इस में क्रम से सौख्य और मृत्यु फल होता है ॥ २७० ॥

सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	फल
५	३	३	५	७	५	मङ्गल के नक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र का ।

इष्टिकारम्भनक्षत्राणि—

ध्रुवभैरवधुभैश्चैव ज्येष्ठान्त्यश्रुतिभिस्तथा ।

स्थिरैर्ज्येष्ठैर्गुरौ मन्दे इष्टिकारम्भमाचरेत् ॥

तथा गेहे सुधालेपमिष्टिकारम्भभेषु च ॥ २७१ ॥

भा० टी०—ध्रुवसंज्ञक लघुसंज्ञक तथा ज्येष्ठा, रेवती, श्रवणा, इन नक्षत्रों में और सूर्य, बृहस्पति, मंगल, इन दिनों में स्थिर लघु में विद्यमान रहने पर ईंट बनाना आरम्भ करना चाहिए । इन्हीं नक्षत्रों में चूने से घर पुतवाना भी श्रेयस्कर है ॥ २७१ ॥

इष्टिकायामग्निदाहः—

सप्त-पञ्च-मुनिवेदपञ्चभिः

शोकलाभरुजदुःखलाभदम् ।

भौमभाच्च गणयेत् सदा बुधै-

रिष्टिकोपरि सुवर्णदीपनम् ॥ २७२ ॥

भा० टी०—मंगल के नक्षत्र से ईंट को पकाने में ७।५ ७।४।५ इन नक्षत्रों में क्रम से कि, लाभ, रोग, दुःख और लाभ फल होता है ॥ २७२ ॥



शोक	लाभ	रोग	दुःख	लाभ	फल
७	५	७	४	५	मङ्गल के नक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र का ।

अथेष्टिकानिस्सारणचक्रम् ।

त्रिकं पञ्च त्रिकं चैव सप्तपञ्चचतुष्टयम् ।

शुभाशुभं चेष्टिकानां फलं निस्सारणं बुधात् ॥ २७३ ॥

भा० टी०—बुध के नक्षत्र से ईटा के निकालने में ३-५-३-७-५-४ नक्षत्रों में शुभ अशुभ क्रम से फल है ॥ २७३ ॥

शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	फल
३	५	३	७	५	४	बुधकेनक्षत्रसेचन्द्रनक्षत्रका

वास्तुशास्त्रोक्तानि ग्राह्यकाण्डानि—

श्रीपर्णी रोहिणी शाकः सर्जश्च सरलाः शुभाः ।

पतङ्गलोध्रशालारूपा तालार्जुनकशिशपाः ॥ २७४ ॥

चन्दनाशोकवदरीमधूकाश्च कदम्बकाः ।

प्रशस्ताश्च शमीनिम्बविल्वाव ज्या गृहान्तिके ॥ २७५ ॥

गृहदारुगुणैर्युक्तं गृहकर्मणि युज्यते ।

गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिन्दे विषमं शुभम् ॥ २७६ ॥

भा० टी०—श्रीपर्णी ( कायफज ) रोहिणी ( कुटकी ) शाक, सर्ज, सरल, पतङ्ग, लोध्र ( लोध ) शलुवा, ताल, अर्जुन, शीशो, चन्दन, अशोक, वदरी, ( बैर ) मधूक ( महुवा ) और कदम्ब काष्ठ श्रेष्ठ हैं और शमी निम्ब, बेल, गृह के समीप वर्जित हैं, गुणयुक्त काष्ठ गृहकार्य में लगाना योग्य है, गृह में सम और अलिन्द ( नोसार वरामदा ) में विषम काष्ठ लगाना शुभ होता है ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

वाराहः—

पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः ।

चैत्यसरित्संगमसम्भवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥ २७७ ॥

कृञ्जानुजातवल्लीनिपीडिता मारुतोपहताः ।



श्वपतिहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥२७८॥

तरवो विवर्जनीयाः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः।

सुरदारुचन्दनसमा मधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् ॥२७९॥

क्षत्रस्यारिष्टास्त्वश्वत्थखदिरबिल्वादि वृद्धिकराः ।

वैश्यानांजीवकखदिरसिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः॥२८०॥

तिन्दुककेशरसर्जार्जुनोत्थशालाश्च शूद्राणाम् ।

सर्वेषां वा शस्ताः सर्वे वृक्षाश्च निन्दिता येन ॥२८१॥

भा० टी०—पितृवन, मार्ग ( रास्ता ) देवालय, बल्मीकयुत, उद्यान ( बाग ) के वृक्ष, संतों के आश्रम, चैत्य और नदी संगम का तथा घड़ा से सींच कर बढ़ाया हुआ अनेक बल्लीवाला, विजुली से पीड़ित नीच जाति तथा हाथियों से पीड़ित, स्वयं सुखा, अग्नि से जला वृक्ष और जिन वृक्षों में मधुमक्षी होयें उन वृक्षों को त्याग कर और जिन वृक्षों के पत्र पुष्प सुन्दर हों, ऐसे वृक्ष गृह में लगाने से शुभ फल होता है। ब्राह्मण के गृह में देवदारु, चन्दन, महुवा, समसंख्यक शुभ हैं, क्षत्रिय के गृह में पीपल, खैर, बेल वृक्ष का काष्ठ शुभ है, वैश्य के गृह के निमित्त विजयसार, खैर, म्योदी और स्यन्दन वृक्ष शुभ है, शूद्र के गृह के लिये तेनुवा नागकेशर सर्ज अर्जुन का काष्ठ लगाना शुभ है, अथवा उन सब वृक्षों का काष्ठ सब वर्णों के लिये श्रेष्ठ हैं जो निन्दित नहीं किये गये हैं ॥ २७७—२८१ ॥

प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्तु हि विभीतकाः ।

दग्धाः कण्टकिनो वृक्षाः वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥२८२॥

अगस्तशिग्रुतालाख्यास्तित्तिडीकाश्च निन्दिताः ।

अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः शुभाः द्रुमाः ॥२८३॥

भा० टी०—पाकर, गूलर, आम, नीम, सेहुड, थूहर, बहेड़ा, जला काठवाला, पीपर, कैथ, अगस्ति, सहिजन, ताल, इमिली, इन वृक्षों का काष्ठ गृहनिर्माण में निन्दित है। अतएव अन्य वृक्षों की लकड़ी गृहनिर्माण में लगावे ॥ २८२ ॥ २८३ ॥

अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन् प्रयोजयेत् ।

न तत्र निवसेत्कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥ २८४ ॥

भा० टी०—दूसरे गृह का लगाया हुआ काष्ठ दूसरे गृह में नहीं लगाना चाहिये, यदि लगाया जाय तो गृहेश उस गृह में वास न करे यदि वसे तो मरे ॥ २८४ ॥

समराङ्गणः—

इष्टिकालोष्ठपाषाणमृत्तिकाजीर्णमायसम् ।



तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारु नूनं गृहाय वै ॥२८५॥

भा० टी०—ईंट, मिट्टी, पत्थर, लोहा, पुराना नहीं लेना चाहिये । तृण पत्र लकड़ी गृह के निमित्त नवीन लेना पंडितों ने कहा है ॥ २८५ ॥

नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णं जीर्णं प्रशस्यते ।

जीर्णं च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतनं शुभम् ॥ २८६ ॥

भा० टी०—नये गृह में नया काष्ठ पुराने में पुराना काष्ठ अच्छा है, पुराने मकान में भी नया काष्ठ लगाना शुभ है किन्तु नव गृह में पुराना काष्ठ नहीं शुभ है ॥ २८६ ॥

गृहसंलग्नार्थद्रुमच्छेदनमुहूर्तमाह—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रेवतीरोहिणीयुते ।

यदा तदा गुरौ लग्ने गृहार्थं तु हरेद्द्रुमान् ॥ २८७ ॥

शुक्रे लग्ने गुरौ केन्द्रेष्वगे राशौ गृहं बुधैः ।

तृणादिभिः समाच्छाद्यं न चवाग्निभयं भवेत् ॥२८८॥

भा० टी०—कृष्णपक्ष चतुर्दशी तिथि रेवती रोहिणी नक्षत्र से युत में जब वृहस्पति लग्न में हों तो गृह के लिये वृक्ष काटना शुभ है । और लग्न में शुक्र केन्द्र में वृहस्पति होकर स्थिरराशि में स्थित हो तो उस समय में काटे हुए वृक्षों से मकान छाया जाय तो अग्नि का भय नहीं रहता है ॥ २८७ ॥ २८८ ॥

वृक्षच्छेदने प्रार्थना—

यान्निह भूतानि वसन्ति तानि

बलिं गृहीत्वा विधिवत् प्रयुक्तम् ।

अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु

क्षम्यन्तु मे चाद्य नमोस्तु तेभ्यः ॥ २८९ ॥

भा० टी०—जिस वृक्ष को काटना होवे उस के नीचे नैवेद्य धर के प्रार्थना करे कि जो जीव इस वृक्ष पर बसते हों वे विधिवत् बलि लेकर अन्यत्र वास करें, उनके निमित्त नमस्कार है ॥ २८९ ॥

कालिदासोक्तवर्जितचित्राणि—

वराहशार्दूलशिवाष्टदाकवो

गृध्राभिधोलूककपोतवायसाः ।

सश्येनगोधादिवकादिपत्रिणो

विचित्रिता नो शरणे शुभावहाः ॥२९०॥



भा० टी०—शूकर व्याघ्र शृगाल सर्प गृद्ध उरुजू कबूतर कौवा बाज गोहटा बका  
पक्षियों का चित्र गृह पर लिखना शुभ नहीं है ॥ २६० ॥

वृक्षा दुग्धसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः  
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी ।

यामाद्दूरमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे  
पार्श्वेकस्य हरेरवीशपुरतो जैनस्य चण्ड्याः ष्वचित् ॥ २६१ ॥

भा० टी०—दुग्धवाले वृक्ष, कांटेवाले वृक्ष और फलवाले वृक्ष गृह के समीप ये अच्छे नहीं  
होते हैं, चंपा, गुलाब, केला, जाती, केतकी ये अच्छे होते हैं एक पहर दिन के पीछे किसी  
भी वृक्ष की गृह पर छाया अच्छी नहीं होती है, ब्रह्मा के मन्दिर के पास और विष्णु सूर्य  
और शिव के सामने जैन मन्दिर के पीछे और देवी के मन्दिर के किसी भाग में गृह का  
निर्माण करना अच्छा नहीं है ॥ २६१ ॥

सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं  
कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभोतिम् ।

प्रजाविनाशं फलिनः समीपे

गृहस्य वर्ज्याः कलधौतपुष्पाः ॥ २६२ ॥

भा० टी०—गृह के पास दुग्धवाले वृक्ष धन का नाश करते हैं, कांटेवाले शत्रु का  
मय करते हैं तथा फलवाले वृक्ष संतति नाश करते हैं और पीत पुष्प शुभ नहीं हैं “गृहे  
धिवर्ज्याः” यह भी पाठ मिलता है इस से गृह में पीत पुष्प का लगाना शुभ नहीं है । यह  
अर्थ होता है ) ॥ २६२ ॥

यदिस्वर्णमयं वृक्षं गृहमध्ये न रोपयेत् ।

अजिरे तुलसीवृक्षं रोपयेदघनाशनम् ॥ २६३ ॥

भा० टी०—यदि स्वर्ण का वृक्ष हो तब भी गृह में न रोपे, परन्तु पापों का नाश करने-  
वाला तुलसी का वृक्ष गृह में अवश्य लगावे ॥ २६३ ॥

दुष्टा भूतसमाश्रिता विटपिनश्छिन्व्या यथा शक्तितः

तं वासं च शमी अशोकवकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ

ब्राह्मा पुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णा च ये दाडिमी

\* सौम्यादेः शुभदौ कपित्थकवटौ औदुम्बराश्वत्थकौ ॥ २६४ ॥

\* याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।

उभयदिषु प्रशस्ताः प्लक्षवदौदुम्बराश्वत्थाः । इति धृतराष्ट्रहितायाम् ।



भा० टी०—जो वृक्ष वृष्ट हो वा जिसमें प्रेतका वास हो उसको काटना शुभ नहीं होता है। बेल, शमी, अशोक, मौसरी, पुलाग और चम्पा को भी काटना अच्छा नहीं है ॥ द्वाक्षा पुष्प का मंडप, चन्दन, तिलक, पीपली और अनार लगाना शुभ है। पाकड़ उत्तर दिशा में, बट पूर्व दिशा में, गूलर दक्षिण दिशा में और पीपल पच्छिम दिशा में शुभ है ॥ २६४ ॥ २९४ ॥

पादपरोपणमुहूर्तः—

वृक्षगुल्मलतारोपो हस्तपुण्याश्विनोध्रुवैः ।

विशाखाश्रृगमूलाह्वरुणैश्च प्रशस्यते ॥ २६५ ॥

गुरौ केन्द्रे शुभे शुके विधौ वारिणि वोदये ।

शुभयुक्तेक्षिते बन्धौ \*सद्वारे वा शुभोदये ॥ २६६ ॥

भा० टी०—हस्त, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, तीनों उत्तरा, विशाखा, मृगशिरा, मूल, शतभिषा ये नक्षत्र हों, केन्द्र में गुरु हों, अच्छे स्थान में शुक्र हों, जलचर राशि में चन्द्रमा हों, वा लग्न जलचर राशि का हो, चतुर्थ में शुभ ग्रह का योग हो, शुभवार और शुभ लग्न हो तो लतागुल्म और वृक्ष का रोपना शुभ है ॥ २६५ ॥ २६६ ॥

पादपरोपणमंत्रः—

ओं वसुधेति च सीतेति पुण्यदेति धरेति च ।

नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्द्धतामिति ॥ २६७ ॥

इस श्लोक से लतादिरोपण करना शुभ है ॥ २६७ ॥

शक्तियामलोकतवृक्षचक्रम्—

सूर्यभादिनभं यावद्वृक्षचक्रं विधीयते ।

त्रयं मूले भवेद्रोगस्त्वचि त्रीणि धनागमः ॥ २६८ ॥

वेदाः शाखासु नाशः स्यात् पत्रे युग्मं दरिद्रता ।

शीर्षे त्रीणि शुभं प्रोक्तं पूर्वं एकं तु मृत्युदम् ॥ २६९ ॥

सुतनाशं पञ्चयाम्ये पश्चिमे द्वे धनप्रदे ।

स्याद् वेदा उत्तरे लाभ इत्युक्तं शक्तियामले ॥ ३०० ॥

भा० टी०—अब वृक्षचक्र को कहते हैं। सूर्य के नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिन कर पहले ३ नक्षत्र मूल में देय, उसमें वृक्ष रोपने से रोग होता है, बाद त्वचा में ३ नक्षत्र

ॐ सोमवारयुते मूले चापलग्ने महाद्रुमाय ।

स्थापयेज्जीवलग्ने च रेवत्यां गुलवासरे ॥ इति वृक्षस्पतिः ॥



का फल धन प्राप्ति है, वाद शाखा में ४ नक्षत्र का फल नाश है, फिर पत्र में २ नक्षत्र का फल दरिद्रता है, वाद शिर में ३ नक्षत्र का फल शुभ है, वाद पूर्व में १ नक्षत्र का फल मृत्यु है, वाद दक्षिण में ५ नक्षत्र का फल पुत्रनाश है, वाद पच्छिम में २ नक्षत्र का फल धनागम है उसके वाद उत्तर में ४ नक्षत्र देय उसका फल लाभ है। ऐसा शक्तियामल में कहा है ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ ३०० ॥

वाटिका वा तडागो वा कूपो वा यदि निर्मितः ।

गृहात्पूर्वं कुवेर्यां च वारुणे शम्भुकोणके ॥ ३०१ ॥

सदा सवित्री भविता सदा दानं प्रयच्छति ।

सदा यज्ञं स पूज्येत यो रोपयति पादपम् ॥ ३०२ ॥

भा० टी०—जो गृह से पूर्व वा उत्तर अथवा पच्छिम या ईशान कोण में वाटिका तडाग ( तालाब ) वा कूप बनवाता है, वह सदा गायत्री का पुरश्चरण करता है सदा दान देता है तथा सदा यज्ञ करता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥

तथा चान्यः—

वरं भूमिरुहा पञ्च न च कोष्ठरुहा दश ।

पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम् ॥ ३०३ ॥

भा० टी०—पाँच वृक्ष का लगाना श्रेष्ठ है दश कोष्ठरुह ( बाँस ) का लगाना अच्छा नहीं है । क्योंकि वृक्ष पत्ते फूल फलों से पितरों को तृप्त करते हैं ॥ ३०३ ॥

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं

न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकम् ।

कपित्थविल्वामलकत्रयं च

पञ्चाश्रवापीनरकं न पश्येत् ॥ ३०४ ॥

भा० टी०—पीपल, नीम, वट, एक इमली, दस अँवरा, तीन और पाँच आम के वृक्ष रोपनेवाला मनुष्य नरक को नहीं देखता है ॥ ३०४ ॥

ईशाने रोपयेद्वात्रीं नैऋत्यां चिञ्चिणीद्रुमान् ।

आग्नेय्यां दाडिमं चैव वायव्ये विल्ववृक्षकम् ॥ ३०५ ॥

प्लक्षानुदक् पूर्ववटं प्रशस्तमुदुम्बरं दक्षिणभागके च ।

अश्वत्थवृक्षं दिशि पश्चिमायां मध्ये तथाग्रान् विविधप्रकारान् ३०६

भा० टी०—ईशान कोण में अँवरा, नैऋत्य कोण में इमली, अग्निकोण में अनार, वायव्य कोण में बेल, उत्तर पाकड़, पूर्व वट, दक्षिण गूलर, पश्चिम पीपल और बीच में विविध प्रकार का आम लगाना शुभदायक होता है ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥



वास्तुराजवत्सलमे—

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां

त्रेधा कार्या वाटिका क्रोडनार्थम् ।

एकद्वित्रिदण्डसङ्ख्या ( ? ) शतं स्यात्

मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः ॥ ३०७ ॥

भा० टी० - राजाओं के गृह के वामभाग में अथवा दक्षिणभाग में क्रीड़ा करने के निमित्त तीन प्रकार की वाटिका ( दगैचा ) बनानी चाहिये । वह वाटिका सौ दंड, दो सौ दंड, या तीन सौ दंड ( ४ हाथ का १ दंड ) रहे । इसके बीच में जलमण्डप तथा जलयंत्र ( फोहारा ) लगाना चाहिये ॥ ३०७ ॥

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयम्

तन्मध्ये जलवापिका जिनपदैरेकांशतो वेदिका ।

स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु रूपान्वितः ।

कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद् भोगाय पृथ्वीभुजाम् ॥ ३०८ ॥

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनोवल्ली च निर्मालिका

जातीहेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला ।

नारिङ्गः करणीवसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकम्

जम्बीरो वदरी च पूगमधुपा जम्बूश्च चूतद्रुमाः ॥ ३०९ ॥

भा० टी० - जलयंत्र बनाने के स्थान को सात २ भाग ( ४९ भाग ) करे । इसके बीच में चारों ओर ३ भाग में भद्र ( बैठने की जगह चवूतरा ) तिसके बीच में २४ भाग में जलकी वापी ( हौड ) बनावे । उसके मध्य में एक भाग में बारह स्तम्भ युक्त मंडप बनावे । कोणों में नकासी बनावे । ऐसा जलयन्त्र राजाओं के भोग के लिये बनावे । उस वाटिका में चम्पा, कुन्द, चमेली, बेला, निर्मालिका, जाती, पीले फूल की केतकी, सफेद गुलाब, पाटल रङ्गका गुलाब ( लाल सफेद ) नरियल, कनैर, लता, लाल पुष्प, जंबीरी, नीबू, बेर, सुपारी, महुआ, जामुन और आम, बिल्व, केला, चन्दन, बट, पीपर हरीतकी और ग इमली, अशोक, कदम्ब, निम्ब, खजूर, अनार, कपूर, अगार, पलाश, सफेद, कनैर, जायफल नीबू, नाग, बेल, बीजू नीबू, तेंदुआ, कगिहारी इन वृक्षों को लगाना चाहिये ३०८॥३०९

द्राक्षैलाशतपत्रिका च वकुला धत्तूरकङ्गोलकौ

शाला तालतमालकौ मुनिवरौ मन्दारपारिद्रुमौ ॥

अन्ये भोगविविक्खाद्यसकलास्ते रोपणीया बुधैः

यं प्राप्नोति च भूतले शुभतरं तच्चम्पकान्वापयेत् ॥ ३१० ॥



एषां च प्रतिसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारो भवेत्  
दोला स्त्रीजनखेलनाय रुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे ॥

बाला प्रौढवधूसुमध्यबनितागानैर्मनोहारिभिः

ग्रीष्मे शारदकेऽथ शीतलजलक्रीडा शुभे मंडपे ॥ ३११ ॥

भा० टी०—ब्राह्मा ( दाख अंगूर ), इलायची, शतारि, मौशरी, धतूर, कंकोल, शाल, तमाल, अगस्त, मदार, पारिजात और अन्य भी भोग के तथा भोजन के योग्य फल पुष्पों को लगाना चाहिये भूमिमें जो शुभ तर प्राप्त हो उनको और चम्पाको लगावे । वृक्ष तथा पुष्पादिकों के सींचने के लिये सार वृक्ष का घटीयन्त्र बनावे । वर्षा ऋतु और वसन्त ऋतु में स्त्रियों के भूलने के लिये दोला ( झूलुआ ) बनावे, इसी प्रकार ग्रीष्म और शरद ऋतु में शीतल जलक्रीडा के लिये सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये ॥ ३१०-३११ ॥

क्षीरवृक्षा वटाश्चत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा ।

सकण्टका शालमली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञकौ ॥

अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः ।

पुन्नागफलिनीनिम्बदाडिमाशोकजातिकाः ॥ ३१२ ॥

नागकेशरकं पुष्पं जपा कुसुमकेशरे ।

जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवापराजिता ॥

मधुबिल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरा ककुभादिकाः ।

यत्र यत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ॥ ३१३ ॥

भा० टी०—दूधवाले, वट, पीपल, लाल पुष्प का वृक्ष, कण्टकी वृक्ष सेमर, पाकर, गूलर ये वृक्ष अग्निकोण में सदा दुष्ट होते हैं और मृत्यु तथा पीडा को देते हैं, पुन्नाग, फलवाला वृक्ष, नीम, अनाग, अशोक, जाती, नागकेशर, जपा, कुसुम ( देवीपुष्प या अठडल ) केशर, जयन्ती, चन्दन, वचा, अपराजिता, मधु, बिल्व, आम, भृंग ( दाल चीनी ) नागर और नरियर ये वृक्ष जिस किसी दिशा में हों शुभ ही होते हैं ॥ ३१२-३१३ ॥

अश्वत्थं च कदम्बं च कदली बीजप्रकरम् ।

गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति ।

सर्वत्र पनसः शस्तो दक्षिणे सकलाः खलाः ॥ ३१४ ॥

भा० टी०—पीपल, कदंब, केला, नीजू, नीवू ये जिसके गृह में रहता है वह गृही बढ़ता नहीं है अर्थात् उसके वंशादि नहीं चलते, कटहर का वृक्ष सब जगह अच्छा होता है परन्तु दक्षिण दिशा में सब वृक्ष बुरे होते हैं ॥ ३१४ ॥



( दातादिमंडल पृष्ठ ३४ में लिखा है और यह इन्द्रादि मण्डल लिखा जाता है )  
अथ मंडलेशानयनम्—

स्वामीहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।

द्विगुणं चाष्टभिर्भक्तंमण्डलाधिप उच्यते ॥ ३१५ ॥

इन्द्रो विष्णुर्यमो वायुः कुबेरो धूर्जटिस्तथा ।

विधाता विघ्नराजश्च मण्डलेशः प्रकीर्तिताः ॥ ३१६ ॥

इन्द्रः सौख्यं यशो विष्णुर्यमो दुःखं निरंतरम् ।

वायुरुत्पाटनं चैव कुबेरो धनदस्तथा ॥ ३१७ ॥

धूर्जटिः कलहो नित्यं धाता सौख्यं प्रवृद्धिदम् ।

सर्वसिद्धिगणाधीशः फलमुक्तं विचक्षणैः ॥ ३१८ ॥

भा०टी०—स्वामी के हस्त प्रमाण से जो गृह का दीर्घ विस्तार हो उसको एकत्र जोड़ कर दो से गुणा करे फिर उसमें ८ का भाग देने से जो शेष बचे उसके अनुसार मंडलाधिप क्रम से इन्द्र, १, विष्णु, २, यम, ३, वायु, ४, कुबेर, ५, महादेव, ६, विधाता, ७, गणेश ८, होते हैं । इन्द्रमण्डलाधिप हो तो सौख्य, विष्णु हो तो यश, यम हो तो निरंतर दुःख, वायु होय तो उत्पाटन, कुबेर हो तो धन देय, और महादेव हो तो सदा कलह को करावें । ब्रह्मा सौख्य को बढ़ावे और गणेश सर्वसिद्धि को देते हैं । परन्तु ऐसी क्रिया से ४८ शेष बचता है अतः जहां जोड़ का अर्थ है वहां गुणना अर्थ ठीक होगा, ऐसा करने से क्षेत्रफल बनेगा और क्षेत्रफल को दो से गुणा कर ८ के भाग से शेषित करने पर इन्द्रादि सब मण्डलेश आवेंगे । (यह मंडलेश का विचार भी जौण है )  
॥३१५-३१८॥

अथाजिरानयनम् गृहचिन्तामणौ—

दीर्घविस्तारसंख्यैके चन्द्रेण गुणिते तथा ।

नवभिस्तु हरेद्भागं शेषमाजिरमुच्यते ॥३१९॥

दाता विचक्षणो भीरुः कलहो नृपदानवौ ।

कलीवशचौरो धनी चेति नामतुल्यं फलं स्मृतम् ॥३२०॥

भा० टी०—आँगन ( चौक ) के दीर्घ विस्तार को एकत्र जोड़कर उसको १ से गुणा करे फिर उसमें ९ का भाग देवे शेष से आँगन का फल कहा है । १ शेष में दाता, २ में विचक्षण, ३ में भीरु, ४ में कलह, ५ में नृप, ६ दानव, ७ में तपुंसक, ८ में चौर, और ९ में या शून्य शेष में धनी फल है ॥३१९॥३२०॥

गृहसावमाह तत्रैव—

धनं धान्यमीशानवायव्यकोणे

तथा चोत्तरे चोत्तमं मङ्गलं स्यात् ।



## नृणामालये वारिसंचारणार्थं

विलं कर्तुमाहुर्धरादेव वृन्दाः ॥ ३२१ ॥

भा० टी०—मनुष्यों के घर का जल बाहर निकलने के लिये एक बिल बनाना चाहिये जिसको नापदान कहा जाता है। वह नापदान यदि ईशानकोण में बनावै तो धनलाभ, वायव्यकोण में धान्यलाभ, उत्तर में उत्तम मंगल होना फल है। किसी के मत से अग्नि नैऋत्य दक्षिण दिशा के अतिरिक्त सब दिशाओं में शुभ है किसी के मत से पश्चिम का भी निषेध है ॥ ३२१ ॥

इति श्रीज्योतिषीन्द्रमुकुटमणिश्रीछत्रधरसूरिसूनुदैवज्ञभूषणमातृ-  
प्रसादकृतायां सोदाहरणभाषाटीकासमन्वितवास्तु-  
सारण्यां गृहारम्भप्रकरणम् ॥ १ ॥

—०—

## अथ गृहप्रवेशप्रकरणम् ।

“वशिष्ठोक्तत्रिविधप्रवेशमाह—

अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञः ।

द्वन्द्व्राह्वयश्चाग्निभयादिजातस्त्वेव प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

भा० टी०—नवीन गृह में प्रथम प्रवेश को अपूर्वसंज्ञक प्रवेश कहते हैं और यात्रा के अन्त्य सपूर्वसंज्ञक प्रवेश कहते हैं, अग्नि के भयसे जो गृह भस्म भया हो उसके छ्वाटनादि करने के बाद जो प्रवेश करे उसका द्वन्द्व नाम है इस प्रकार से प्रवेश तीन प्रकार के होते हैं ॥ १ ॥

तथा वास्तुशास्त्रे—

वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तो राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तः ।

दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सत्कीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ २ ॥

भा० टी०—वधूप्रवेश दिन में प्रशस्त नहीं है, रात्रि में राजप्रवेश प्रशस्त नहीं है, और गृह प्रवेश दिन रात्रि दोनों में सुन्दर कीर्ति देनेवाला है इस प्रकार त्रिविध प्रवेश है ॥ २ ॥

रामोक्तगृहप्रवेशशुद्ध्यादिकम्—

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे

यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ।

स्याद्प्रवेशनं द्वास्थमृदुध्रुवोडुभि-

र्जन्मर्जलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥ ३ ॥



भा० टी०—राजा की यात्रानिवृत्ति में और नूतन गृह में प्रवेश का सुहृत् गुरु शुक्र के अस्तादि दोषरहित उत्तरायण सूर्य में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन और वैशाख मास में शुभ है (कार्तिक मार्गशीर्ष मध्यम है और किसी के मत से श्रावण भी मध्यम है) गृहद्वार जिस दिशा में हो उस \* दिशाके नक्षत्रों में से मृदु ( मृ. चि. अनु. रे. ) ध्रुव ( तीनों उत्तरा रोहिणी ) संज्ञक इन ८ नक्षत्रों में स्थिर राशि में गृहप्रवेश शुभ है । वह स्थिर राशि गृहकर्ता के जन्म लग्न तथा जन्मराशि से उपचय ३।६।१०।११ वीं राशि होना ही अपूर्व सपूर्व गृह प्रवेश करना शुभप्रद है ॥ ३ ॥

वशिष्टोक्तमासफलम्—

माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे

पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च ।

चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो

राघेऽर्थ शुके पशुपुत्रलाभः ॥ ४ ॥

भा० टी०—माघ में प्रथम गृहप्रवेश करने से धन का लाभ, फाल्गुन में पुत्र का तथा अर्थ का लाभ, चैत्र में अर्थ की हानि, वैशाख में धन धान्य का लाभ और ज्येष्ठ में पशु पुत्र का लाभ होता है ÷ ॥ ४ ॥

गृहारम्भोदिते मासे धिष्णो वारे विशेद् गृहम् ।

विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा ॥ ५ ॥

भा० टी० गृहारम्भ के कहे हुए मास नक्षत्र वार में सौम्यायन में ( पत्थर व मट्टी के ) गृह में प्रवेश करना शुभ है, तृण के गृह में सर्वदा प्रवेश करना शुभ है ॥ ५ ॥

\* कृत्तिका से ७ नक्षत्र पूर्व दिशा का, मघा से ७ नक्षत्र दक्षिण दिशा का, अनुराधा से ७ नक्षत्र पच्छिम दिशा का, धनिष्ठा से ७ सात नक्षत्र उत्तर दिशा का है यह द्वास्थ नक्षत्र है, इसके अनुसार पूर्व द्वार के गृह में रो. मृ. नक्षत्र में (दक्षिण द्वार के गृह में उ. फा. चि. नक्षत्र में) पश्चिम द्वार के गृह में उ. फा. अनु. नक्षत्र में तथा उत्तर द्वार के गृह में उ. भा. रे. नक्षत्र में प्रवेश करना विशेष शुभ है ।

—गृह प्रवेश का उत्तम मास माघ फाल्गुन वैशाख और ज्येष्ठ है और उत्तम नक्षत्र रोहिणी श्रृगशिरा तीनों उत्तरा चित्रा अनुराधा तथा रेवती हैं । मध्यम मास कार्तिक मार्गशीर्ष श्रावण है, मध्यम नक्षत्र अश्विनी पुष्य हस्त स्वाती मूल श्रवण धनिष्ठा यतभिषा है । शेष ११ नक्षत्र त्याज्य हैं ।

जो ८ नक्षत्र उत्तम कहा है उनमें भी पूर्व मुख के गृह के लिये रोहिणी श्रृगशिरा दक्षिण मुख के लिये उत्तरा फाल्गुनी चित्रा, पच्छिम मुख के लिये अनुराधा उत्तराषाढ और उत्तर मुख के लिये उत्तराभाद्रपद रेवती द्वास्थ होने के कारण विशेष उत्तम हैं ।

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ।

श्रावणे मध्यमश्चैव नूतनागारे नृणामिति ॥



त्रिविधप्रवेशे विशेषः—

कूग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे ।  
शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्धयै कृष्णे च तावद् दशमीं च यावत् ॥ ६ ॥

भा० टी०—त्रिविध प्रवेश में जिस नक्षत्र पर पापमह हो वह और जो नक्षत्र पापग्रह से विद्ध हो वह त्याज्य है, शुक्लपक्ष में प्रवेश करना निरन्तर वृद्धि के हेतु है परन्तु कृष्णपक्ष में दशमी तिथि तक प्रवेश करना शुभ है ॥ ६ ॥

पुष्ये धनिष्ठा मृदुवायुमूल—

स्थिराश्विनीविष्णुजलेशहस्ते ।

एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रै—

श्चिरं वसेद् भूरिसमागमैश्च ॥ ७ ॥

भा० टी०—पुष्य धनिष्ठा मृदुसंज्ञक स्वाती मूल स्थिर संज्ञक अश्विनी श्रवण शतभिषा हस्त इन नक्षत्रों में गृह प्रवेश करने से विशेष सम्पूर्ण वस्तुओं से युक्त पुत्र-पौत्र में समन्वित चिरकाज तक रहता है ॥ ७ ॥

ऋतुरे रोहिणीयुग्मे रेवत्यां वासवद्वये ।

पुष्ये त्वाष्ट्रद्वये मैत्रे प्रवेशोऽभिहितः करे ॥ ८ ॥

भा० टी०—तीनों उत्तरा रोहिणी मृगशिरा रेवती धनिष्ठा शतभिषा पुष्य चित्रा स्वाती अनुराधा और हस्त नक्षत्र में गृहप्रवेश करना शुभप्रद है ॥ ८ ॥

लग्नफलम् ।

\*मेषे यानं घटे व्याधिर्धान्यहानिमृगे गृहम् ।

विशतां कर्कटे नाशः शेषलग्नेषु शोभनम् ॥ ९ ॥

भा० टी०—मेष लग्न में प्रवेश करने से यात्रा, कुम्भ में रोग, मकर में धान्यहानि, कर्क में नाश, शेष लग्न में शुभ होता है ॥ ९ ॥

लल्लः—

व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो बन्धुनाशकृत् ।

पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नः प्राणहा पितृकप्रदः ॥ १० ॥

दैवज्ञचल्लभे विशेषः—

\* निन्दिता अपि शुभांशसमेताः तौलिमेषमकराः सकुलीराः ।

कर्तुरौपचयगाश्च विलग्ने-राशयः शुभफलाश्च भवन्ति ॥



सिद्धिदो धनदो नाशो भवेत् तज्जन्मराशिगः ।

लग्नस्थः क्रमशो राशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने ॥ ११ ॥

भा० टी०—जन्मलग्न से द्वादश राशिगत गृहप्रवेश लग्न का क्रम यों है यदि जन्म की राशि प्रवेश लग्न का हो तो रोगनाश, द्वितीय होय तो धननाश, तृतीय हो तो वित्त, चतुर्थ हो तो वन्धुनाश, पंचम हो तो पुत्रहानि, षष्ठ हो तो शत्रुनाश, सप्तम हो तो स्त्रीनाश, अष्टम हो तो प्राणनाश, नवम हो तो पितृक रोग, दशम हो तो कार्यसिद्धि, एकादश हो तो धनलाभ और द्वादश हो तो नाश होता है ॥१०॥११॥

वास्तुपूजासु रामः—

मृदुध्रुवचिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत् ॥

भा० टी०—गृहप्रवेश के पहिले मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) ध्रुव (तीनों उत्तरा रोहिणी) चिप्र (हस्त अश्विनी पुष्य अभिजित्) चर (स्वाती पुनर्वसु श्रवण धनिष्ठा शतभिषा) तथा मूल नक्षत्र में \* वास्तुपूजा और बलि करना शुभ है ॥

“प्रवेशे लग्नशुद्धिस्तत्र रामः—

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैः

लग्ने त्रिषष्टायगतैश्च पापकैः ॥ १२ ॥

शुद्धाऽम्बुरन्ध्रे विजनुर्भूमृत्यो

व्यकाररित्ताचरदर्शचैत्रे ॥

अग्नेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च

कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ॥ १३ ॥

भा० टी०—गृहप्रवेश में लग्नशुद्धि कहते हैं कि त्रिकोण ५।९ केन्द्र १।४।७।१० धन २ आय ११ जि ३ रे भाव में शुभ ग्रह होय, और ३।६।११ वें पापग्रह होय, चतुर्थ अष्टमभाव ग्रह से रहित हो जन्मलग्न तथा जन्म राशि से अष्टम लग्न न हो तथा सूर्य

\* अज्ञानवश कुछ लोग वास्तुपूजन हवन के दिन अग्निचक्र हवनचक्र को न देख मुहूर्त नहीं है अग्निचक्र हवनचक्र नहीं बनता है एक बनता है एक नहीं बनता है ऐसा कहते हैं । परन्तु उद्योतिर्निबन्ध में कुछ कार्य ऐसे हैं जहाँ अग्नि तथा आहुति का विचार नहीं है वह लिखा जाता है—

दुर्गाहोमविधौ विवाहसमये सीमन्तपुत्रोत्सवे,

गर्भाधानविधौ च वास्तुसमये विष्णोः प्रतिष्ठासु च ।

मौज्जीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके,

होमो नित्य द्वीतरितं, न कथितं चक्रं च बहुरपि ॥



मंगलवार रिक्ता ४।६।१४ तिथि चर १।४।७।१० लग्न तथा अंश, अमावसतिथि और चैत्र का महीना न होय भकूट शुद्ध होय तब कलश में जल भर कर ब्राह्मण को आगे करके गृह में प्रवेश करे ॥१२॥१३॥

वामगतरविज्ञानं तिथिपरत्वेन पूर्वाभिमुखं गृहप्रवेशमाह—

वामो रविमृत्युसुतार्थलाभतोऽ-

कें पञ्चमे प्राग् वदनादि मन्दिरे ॥

पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो

नन्दादिके याम्यजलान्तरानने ॥१४॥

× वामसूर्यविचार—प्रवेश लग्न से जो अष्टम स्थान है उससे ५ स्थान पर्यन्त पूर्व मुख द्वारवाले गृह को वाम सूर्य होता है, पंचम स्थान से पाँच स्थान नवपर्यन्त दक्षिण मुख द्वार गृह में प्रवेश को वामसूर्य होता है, द्वितीय स्थान से ५ स्थानों में सूर्य हो तो पश्चिम मुख गृह में, एवं एकादश स्थान से ५ स्थानों में सूर्य हो तो उत्तर मुख गृह में प्रवेश को वाम रवि होता है। इस चक्र से केवल ४ संक्रान्ति के सूर्य का उदाहरण दिया है ब्येष्ट में मिथुनार्क होने पर तथा श्रावण कार्तिक मार्गशीर्ष में विचार ले। पूर्ण तिथि (५।१०।१५) में पूर्ण मुखकेगृहमें। नन्दा तिथि (१।६।११) में दक्षिणा गृहमें, भद्रातिथि (२।७।१२) में पश्चिम गृह में और जया तिथि (३।८।१३) में उत्तर मुख के गृह में प्रवेश शुभ है ॥ १४ ॥

दिशा	पूर्वमुख के गृह में	दक्षिणमुख के गृह में	पश्चिममुख के गृह में	उत्तर मुख के गृह में
मेष के सूर्य में	२।३।४।५।६	५।६।७।८।९	८।९।१०।११।१२	११।१२।१३।१४
वृष के सूर्य में	३।४।५।६।७	६।७।८।९।१०	९।१०।११।१२।१३	१२।१३।१४।१५
मकर के सूर्य में	११।१२।१३।१४	२।३।४।५।६	५।६।७।८।९	८।९।१०।११।१२
कुम्भ के सूर्य में	१२।१३।१४।१५	३।४।५।६।७	६।७।८।९।१०	९।१०।११।१२।१३

रामोक्तगृहप्रवेशे कुम्भचक्रम्—

वक्त्रे भूरविभात् प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृतः ।

प्राच्यामुद्रसनं कृतो यमगतः लाभः कृतः पश्चिमे ॥

× यदि चर लग्न से वाम रवि होते हों तो प्रवेश न करे। यदि अष्टमस्थ द्वादशस्थ सूर्य होनेपर वाम रवि होता हो और अन्य लग्न से ग्रह ठीक न हो तो अष्टमस्थ द्वादशस्थ सूर्य में भी गृहारंभ करना शुभ है।



श्रीर्वेदाः कलिरुतरे युगमिता गर्भो विनाशो गुदे ।

रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥१५॥

भा० टी०-कलश चक्र इस प्रकार है कि सूर्य नक्षत्र से १ नक्षत्र कलश के मुखका नक्षत्र है उसमें प्रवेश करने से अग्निदाह होता है, बाद ४ नक्षत्र कलश के पूर्व में देय उसमें प्रवेश करने से उदवास, बाद ४ नक्षत्र कलश के दक्षिण में देय उसमें प्रवेश करने से लाभ, फिर ४ नक्षत्र कलश के पच्छिम में देय उसमें प्रवेश करने से लक्ष्मी-प्राप्ति, फिर ४ नक्षत्र कलश के उत्तर में देय उसमें प्रवेश करने से कलह होता है, फिर ४ नक्षत्र कलशके गर्भदेय उसमें प्रवेश करने से उसका फल विनाश है, फिर ३ नक्षत्र गुदा में देय उसमें प्रवेश करने से स्थिरता, इसके बाद ३ नक्षत्र कंठ में देय उसमें प्रवेश करने से सर्वदा स्थिरता प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

सूर्य के नक्षत्र	अ.	भ.	क.	रो.	मृ.	उ.पा.	श्र.	ध.	श.	पू.
गृहप्रवेश नक्षत्र	उ.फा. उ.भा. रे.	उ.फा. चि. उ.भा. रे.	उ.फा. चि. उ.भा. रे.	उ.फा. चि. उ.भा. रे.	उ.फा. चि. उ.भा. रे.	उ.भा. रे. रो. मृ. अनु.	रे. रो. मृ. अनु. उ.पा.	रो. मृ. अनु. उ.पा.	रो. मृ. उ.पा.	रो. मृ. उ.पा.

जीर्णं गृहेऽन्यादिभयान्नवेशपि

मार्गोर्जयोः श्रावणकेऽपि सत्स्यात् ।

वेशोऽम्बुपेज्यानिवासवेषु

नावश्यमस्तादिविचारणात् ॥ १६ ॥

भा० टी०-अन्य किसीके बनाये वा स्वनिर्मित गुराने गृहमें तथा स्वनिर्मित नूतन गृहमें अग्नि बिजुली राजभय आदि से तप्त हो गया होय उसको अच्छी तरह ध्याय कर उसमें गृह प्रवेशोक्त मास नक्षत्रों में और किसी के मत से मार्गशीर्ष कार्तिक श्रावण मास में तथा शतभिषा पुष्य स्वाती धनिष्ठा नक्षत्र में भी प्रवेश करना श्रेष्ठ है इसमें अस्तादिक का विचार नहीं है ॥ १६ ॥

१ नित्ययाने गृहे जीर्णं प्राशने परिधानके ।

वभूयवेशमाङ्गल्ये न मौल्यं गुह्यक्रोयः ॥ इति ज्योतिःप्रकाशे ।



नारदः-

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् ।

गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत् ॥ १७ ॥

भा० टी०-विना किवाड़ का बिना छाया हुआ और जिसमें हवन दिक्पालादि का बलि ग्राह्य भोजन न भया हो ऐसे गृह में प्रवेश न करे, क्योंकि वह गृह विपत्ति की खानि है ॥ १७ ॥

भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् ।

गन्धपुष्पबलिपूजितामरब्राह्मणध्वनियुतं गृहं विशेत् ॥ १८ ॥

भा० टी०-बहुत पुष्प तोरण से जल से पूर्ण कलश शोभित करके गंध पुष्प नैवेद्य से देवता को पूजित कर "आनोभद्राः" इत्यादि वेदध्वनि से युत गृह में प्रवेश करे ॥ १८ ॥

यजमानः सपत्नीकः धेनुं विप्रं कुमारिकाम् ।

आदौ प्रदक्षिणीकृत्य विशेद्गोहं द्विजान्वितः ॥ १९ ॥

भा० टी०-गृहकर्ता स्त्रीके सहित गृह प्रवेश के समय गणेशादि के पूजा के बाद गो ब्राह्मण कुमारी कन्या की प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण के साथ कलश हाथ में लिये गृह में प्रवेश करे ॥ १९ ॥

श्रीपतिभाषितगृहप्रवेशान्यकृत्यानि-

ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः

शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः ।

धनैः सुरत्नैः पशुभिः समर्चयेत्

सहान्धदीपान् पुरवासिनस्तथा ॥ २० ॥

भा० टी०-गृहप्रवेश करने के बाद राजा ( यजमान ) ब्राह्मण मित्र पुरोहित कारीगर मकान के पिण्ड दिक्साधन आदि करनेवाले ज्योतिषी कर्मकाण्डी सन्त को और पुरवासियों को भी धन रत्न पशु ( हाथी घोड़ा गाय बैल भैंस ) देकर प्रसन्न करे "शिष्यद्वैतब्रह्मविधिज्ञगौरान् राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः" इससे भूमिदान वस्त्रदान से भी प्रसन्न करना उचित है ॥ २० ॥

तथा कश्यपः-

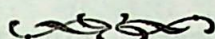
एवं यः प्रविशेद्राजा योगे दैवज्ञकीर्तिते ।

काले शास्त्रोक्तविधिना शरीरसुखमश्नुते ॥ २१ ॥



भा० टी०—इस प्रकार ज्यौतिषी के कहे हुए योग में शास्त्रोक्त विधिसे जो गृह में प्रवेश करे वह शरीर सुख को भोगता है ॥ २१ ॥

इति श्रीज्यौतिषीन्द्रमुक्तमणिश्रीछत्रधरसूरिसूनुवैवक्षभूपणमातृप्रसादपाण्डे-  
यकृतायां सोदाहरणान्वितायां वास्तुसारण्यां गृहप्रवेशप्रकरणम् ॥ २ ॥



## अथ दकार्गलम् ।

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।  
पुंसां यथाङ्गेषु शिरा तथैव चितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥१॥  
एकेन वर्णेन रसेन चाभश्च्युतं नभस्तो वसुधा विशेषात् ॥  
नानारसत्वं बहुवर्णतां वा गतं परीक्ष्यं चितितुल्यमेव वा ॥२॥

भा० टी०—मैं वराहमिहिराचार्य धर्म यश का देनेवाला और जिससे जल प्राप्त हो ऐसा 'दकार्गल' कहता हूँ । जैसे पुरुषों के शरीर में ऊपर नीचे शिरा ( नस ) रहती है, उसी तरह पृथ्वी में भी जलवाहिनी शिरा रहती है आकाश से जल एक वर्ण और एक रस से पृथ्वी पर गिरता है । परन्तु नाना प्रकार की भूमि होने से जल भी अनेक रंग तथा स्वाद का होता है इससे भूमि के समान जल का रूप और गुण जानें ॥ १ ॥ २ ॥

पुरुहूतानलयमनैर्ऋतवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः ।

विज्ञातव्याः क्रमशः पूर्वाद्यानां दिशां पतयः ॥३॥

दिक्पतिसंज्ञाश्च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी ।

एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ॥ ४ ॥

पातालादूर्ध्वं शिराः शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिताश्च ।

कोणदिगुत्था न शुभा शिरा निमिच्चान्यतो वक्षे ॥ ५ ॥

भा० टी०—इन्द्र-अग्नि-यम-निऋति-वरुण-वायु-सोम-महादेव यह आठ देवता पूर्वादिक आठों दिशाओं के क्रम से मालिक होते हैं । जिस दिशा से जो शिरा ( जल-वाहिनी नस ) आवे उसको उस दिशा के स्वामी के नाम से जाने अर्थात् उसका नाम उसके स्वामी के नाम से कहा जायगा और मध्य में नवमी शिराको महाशिरा जाने इससे अन्य भी सैकड़ों शिराएँ निकली हैं और उनके नाम प्रसिद्ध हैं, पाताल ( नीचे ) से ऊपर जो शिरा आवे वह और पूर्वादिक चारों दिशा की शिरा शुभ है, अग्नि



आदि चारो कोण की शिरा शुभ को देनेवाली नहीं है इसके अन्तर्गत शिरा के चिह्नों को कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिः ततः पश्चात् ।

सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥

चिह्नमपि वाद्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत्पीता ।

पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः ॥ ७ ॥

भा० टी०—जल रहित देश में यदि वेतका पेड़ हो तो उसके पश्चिम दो हाथ पर डेढ़ पुरुष के नीचे जल रहना है और पश्चिम तरफ से सोती बहती है। पहिले पानी देख पड़ने को सोती कहते हैं और शिरा भी कहते हैं किसी देश में नस और किसी देश में झरना कहते हैं। आधे पुरुष (२॥ हाथ) के नीचे सफेद मेघा देख पड़ेगा। बाद पीली मिट्टी उसके बाद एक पुट (दोना के समान जगह में) भेदक पत्थर रहेगा उसके नीचे जल मिलेगा। (यहाँ पर १२० अंगुल का पुरुष माना है जिसका ५ हाथ होता है, पुरुष एड़ी उठाकर और हाथ उठा कर खड़ा होने पर १२० अंगुल का होता है) ॥ ६ ॥ ७ ॥

जम्बाः चोदकहस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा ।

मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥

भा० टी०—जम्बू (जामुन) वृक्ष के उत्तर तीन हाथ पर दो पुरुष के नीचे पूर्व में शिरा है। पुरुष भर खोदने पर लोहके समान गंधवाली मिट्टी और उसमें मेघा का चिह्न देख पड़ेगा ॥ ८ ॥

जम्बूवृक्षस्य प्राग्बलमीको यदि भवेत्समीपस्थः ।

तस्माद् दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥

अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः ।

मृदुभवति चात्र नीला दीर्घकालं बहु च तोयम् ॥ १० ॥

भा० टी०—जामुन के वृक्ष के पूर्व में समीप ही बलमीक (सर्पस्थान व चिबटारी) हो तो उसके दक्षिण दो पुरुष के नीचे मीठा जल रहता है, उसका चिह्न यह है कि आधा खोद देने पर वहाँ मछली और सफेद गोल पत्थर तथा नीली मिट्टी मिलती है, और वहाँ बहुत जल होता है और बहुत काल तक रहता है ॥ ९ ॥ १० ॥

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे ।

पुरुषे सितोऽहिरश्मांजनोपमोऽथः शिरा सुजला ॥ ११ ॥

भा० टी०—जल रहित देश में यदि गूलर का वृक्ष हो तो उसके तीन हाथ पश्चिम



अर्धार्ध पुरुष के नीचे सुन्दर जलवाली शिरा है एक पुरुष प्रमाण खोदने पर सफेद सर्प देख पड़ेगा फिर काजल के समान काजा देख पड़ने के बाद उसके नीचे जल जानै ॥११॥

उदगर्जुनस्य दृश्यो बल्मीको यदि ततोऽर्जुनो हस्तैः ।

त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥१२॥

श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृदूधूसरा ततः कृष्णा ।

पीता सिता ससिकता ततो जल निर्दिशेदमितम् ॥१३॥

भा० टी०—अर्जुन वृक्ष के उत्तर जो बल्मीक हो तां उस वृक्ष के तीन हाथ पश्चिम सादे तीन पुरुष प्रमाण के नीचे जल है । उसकी पहिचान यह है कि आधा पुरुष प्रमाण ( ठाई हाथ ) खोदने पर सफेद गांधा ( गोहटा ) एक पुरुष प्रमाण ( पांच हाथ ) के नीचे धूसरी सफेद काला , मिट्टी उसके नाचे काला मिट्टी उसके नाचे पाली मिट्टी उसके नीचे रती से मिला सफेद मिट्टी उसके नीचे बहुत जल जानै ॥ १२ ॥ १३ ॥

बल्मीकोपचितायां निगुण्यां दक्षिणेन कथितकरैः ।

पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥ १४ ॥

रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः ।

लिकता सशर्कराथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥१५॥

भा० टी०—यदि मेवड़ी वृक्ष बल्मीक से युक्त हो तो उसके तीन हाथ पर सवा दो पुरुष खनै तो कभा भी सुख न सकनेवाजा माठा जल होय । पहिचान—आधे पुरुष प्रमाण के नीचे रोहित ( रोहू ) मछली पाली मिट्टी उसके नीचे सफेद मिट्टी उसके नीचे पत्थर से युत रती उसके नीचे जल होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

पूर्वेण यदि बदर्या बल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् ।

पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता पृहंगाधिकार्धनरे ॥ १६ ॥

भा० टी०—यदि बैर के पेड़के पूर्व बल्मीक होय तो उसके पश्चिम ३ हाथ पर जल मिलेगा । वहाँ की निशानी यह है कि आध पुरुष पर सफेद बिस्तुइया मिलेगी और उसके नीचे खोदने पर जल मिलेगा ॥ १६ ॥

सपलाशा बदरी चेद्दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति ।

पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभिश्चिह्नम् ॥१७॥

भा० टी०—यदि पलास ( छीउल ) और बैर बल्मीक युक्त होय या न होय तो बैर वृक्ष के ३ हाथ पश्चिम सवा तीन पुरुष के नीचे खोदने पर जल मिलेगा, जिसका चिह्न यह है कि पुरुष भर दुण्डुभ ( बिना बिपवाला दां मुख का सर्प ) मिलेगा उसके पासही जल मिलेगा ॥ १७ ॥



बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं याम्येन ।

पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत्कृष्णोऽर्धनरे च मण्डूकः ॥१८॥

भा० टी०—जहां बेल, गूलर दोनों का योग ( एकत्र ) हो उसके तीन हाथ दक्षिण छोड़ कर तीन पुरुष के नीचे खोदने पर जल मिलेगा, अर्द्ध पुरुष ( २॥ हाथ ) खोदने पर काला मेघा मिलेगा ॥ १७ ॥

काकोदुम्बरिकायां बल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् ।

पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥१९॥

आपाण्डुपीतका मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः ।

पुरुषार्द्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥२०॥

भा० टी०—काकोदुम्बरी ( बोखारे का पेड़ ) वृक्ष के नीचे बल्मीक देख पड़े तो वहां सवा तीन पुरुष प्रमाण खोदें तो पश्चिम तरफ जलशिरा वहती है। चिह्न—यहां थोड़ी सफेद मिट्टी उसके नीचे पीली उसके नीचे श्वेत पत्थर और अर्द्ध पुरुष प्रमाण तक खोदने पर उज्ज्वल चूहा देख पड़ता है ॥ १९ ॥ २० ॥

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः ।

प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणे प्रथमम् ॥२१॥

मृत्नीलोत्पलवर्णा कापोता चैव दृश्यते तस्मिन् ।

हस्तेऽजगन्धिको मत्स्यो भवति पथोऽल्पं च सच्चारम् ॥२२॥

भा० टी०—जलरहित देश में कपिल ( रुई, मँदार, बड़ी मौसरी ) का पेड़ देख पड़े तो उसके पूर्व तीन हाथ पर सवाहीन हाथ के नीचे दक्षिण शिरा वहती है, उसके चिह्न पहिले नीलकमल के सदृश मिट्टी फिर कबूतर के रंग की मिट्टी या पीली मिट्टी देखने में आवेगी उसके नीचे एक हाथ खनने पर अजगन्धिक मत्स्य देख पड़ेगा या बकरी के गन्ध सदृश मछली देख पड़ेगी ॥ २१ ॥ २२ ॥

शोणाकं तरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य ।

कुमुदानाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥२३॥

भा० टी०—शोणाक ( टेसू ) के वृक्ष के वायु कोण में दो हाथ छोड़ कर तीन पुरुष के नीचे कुमुदा नामक शिरा वहती है ॥ २३ ॥

आसन्नो बल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि ।

अध्यर्द्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥२४॥

भा० टी०—विभीतक ( बहेड़ा ) वृक्ष के दक्षिण दिशा के तरफ बल्मीक देख पड़े तो उस वृक्ष के २ हाथ पूर्व में डेढ़ पुरुष के नीचे जल शिरा जानै ॥ २४ ॥



तस्यैव पश्चिमायां बल्मीको यदि दृश्यते भवेद्धस्ते ।

तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥२५॥

श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुम्कुमाभोऽश्मा ।

अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते ॥२६॥

भा० टी०-बहेड़ा के पश्चिम में बल्मीक होय तो उस वृक्ष के उत्तर १ हाथ छोड़ कर साढ़े चार पुरुष के नीचे जल शिरा रहती है । चिह्न-पहिले एक पुरुष प्रमाण खोदने पर विश्वम्भरक ( प्राणिविशेष ) देख पड़ता है । बाद लाल पत्थर उसके नीचे पश्चिम में जल शिरा है परन्तु वह ३ वर्ष में नाश होगी ॥ २५ ॥ २६ ॥

सकुशः सित ऐशान्यां बल्मीको यत्र कोविदारस्य ।

मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥२७॥

प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता ।

कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥२८॥

भा० टी०-कषनार का वृक्ष जिस भूमि में दृष्टिगोचर हो यदि उस वृक्ष से ईशान कोण में कुशा से युक्त रुफेद रंगका बल्मीक होय तो उस वृक्ष और बल्मीक के मध्य में साढ़े पांच पुरुष के नीचे बहुत जल रहता है । वहां ये चिह्न होते हैं-प्रथम पुरुष में कमलोदर तुल्य सर्प देख पड़ेगा उसके बाद ( लाल ) वर्ण की भूमि मिलेगी फिर हरे रंग का पत्थर मिलेगा । ये चिह्न वहां के हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

यदि भवति सप्तपर्णो बल्मीकवृक्षस्तदुत्तरे तोयं ।

वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवन्ति चिह्नानि ॥२९॥

पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च ।

पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा ॥३०॥

भा० टी०-यदि सप्तपर्ण वृक्ष बल्मीक से युक्त हो तो उस वृक्ष से उत्तर ५ हाथ के बाद जल होता है । उसके चिह्न इस प्रकार के होते हैं-पहिले आधे पुरुष के नीचे हरितवर्ण का मेढर मिलेगा, फिर हरिताल के समान भूमि मिलेगी, उसके बाद मेघ के तुल्य वर्ण का पत्थर मिलेगा और उसके नीचे मीठे जलवाली उत्तर शिरा होगी ॥ २९ ॥ ३० ॥

सर्वेषां वृक्षाणामधः स्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः ।

तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥३१॥

पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत् पीतिका ततः श्वेता ।

दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र ॥ ३२॥



भा० टी०-सब वृक्षों में जिनके नीचे मेढक (दुर्) होय, उस वृक्ष से उत्तर दिशा में १ हाथ दूरी पर ४८ पुरुष के नीचे जल रहता है। एक पुरुष नीचे खोदने से नेवला (नकुल) मिलेगा, वहाँ चिह्न यही है-उसके बाद नीली मिट्टी उसके बाद श्वेत (सफेद) मिट्टी उसके बाद मेढक (दुर्) के समान पत्थर मिलेगा उसके नीचे जल मिलेगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य ।

हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्द्धे ॥३३॥

कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा ।

उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम् ॥३४॥

भा० टी०-करञ्ज वृक्ष के दक्षिण दिशा में सर्पावास का बल्मीक दिखाई दे तो उस करञ्ज वृक्ष के दक्षिण दिशा में दो हाथ दूरी के बाद साढ़े तीन पुरुष के नीचे जल-वाहिनी सोती मिलती है, इस प्रकार उसका चिह्न जानै प्रथम आधे पुरुष नीचे खोदने पर कच्छप तथा उसके आगे पूर्वाभिमुख जल बहता हुआ मिलेगा, द्वितीय उत्तर शिरा मीठा जल मिलेगा उसके नीचे हरे रंग का पत्थर मिल कर के अन्त में जल मिलेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् ।

परिहृत्य पञ्च हस्तानर्धाष्टमपौरुषे प्रथमम् ॥३५॥

अहिराजः पुरुषेऽस्मिन्धूमा धात्री कुलत्थवर्णोऽश्मा ।

माहेन्द्रो भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥३६॥

भा० टी०-महुवा के वृक्ष से उत्तर दिशा में यदि सर्प का बल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से पश्चिम ओर पाँच हाथ की दूरी के बाद साढ़े सात पुरुष नीचे जल रहता है, प्रथम एक पुरुष के नीचे सर्पराज मिलेगा तदनन्तर उसके नीचे धूम्रवर्ण की भूम तथा उसके नीचे कुलत्थ (कुलथी) वर्ण का पत्थर मिलेगा। वहाँ पर माहेन्द्रो नाम पूर्वाभिमुख जल बहनेवाला शिरा होती है और उस से सदैव फेन युक्त जल बहा करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

बल्मीकः सिन्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत् ।

पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥३७॥

भा० टी०-जो तिलक वृक्ष से दक्षिण में उत्तम बल्मीक, जहाँ पर कुश दूर्व से युक्त होय, तो उस वृक्ष से पश्चिम ओर पाँच हाथ के बाद पाँच पुरुष के नीचे जल रहता है वहाँ पर पूर्वा शिरा है ॥ ३७ ॥

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् ।

परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयेनैः ॥३८॥



कौवेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् ।

कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥३६॥

भा० टी०-यदि सर्पावास बलमीक कदम्ब वृक्ष से पश्चिम दिशा में होय तो जल दक्षिण दिशा में तीन हाथ दूरी के बाद पौने छः पुरुष नीचे बहता है । वहां उत्तरा नामक शिरा होती है, उसमें से लोह के समान गन्ध निकलता हुआ जल निकलता है । उस का चिह्न यही है कि प्रथम एक पुरुष के नीचे खोदने से सोना के समान मेढक (मण्डूक) निकलता है और पीत वर्ण की मिट्टी निकलती है ॥ ३८ ॥ ३६ ॥

बलमीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा ।

पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥४०॥

भा० टी०-यदि ताड़ के वृक्ष या नागियन के वृक्ष के समीप बलमीक स्थित हो तो उन वृक्षों के पश्चिम दिशा में ६ हाथ के बाद चार पुरुष के नीचे जल दिखाई पड़ेगा और वहाँ दक्षिण शिरा होगी ॥ ४० ॥

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम् ।

सप्त परित्पज्य करान्खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥४१॥

कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटभिदपि पाषाणः ।

श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥४२॥

भा० टी०-यदि सर्पावास बलमीक कैथके वृक्ष से दक्षिण दिशा में हो तो उस कैथ वृक्ष से उत्तर दिशा में ७ हाथ के बाद ५ पुरुष नीचे जल गहता है । उसके ये चिह्न हैं-प्रथम तो १ ही पुरुष खोदने पर कर्बुर वर्ण का सर्प तथा काली मिट्टी होगी तदनन्तर पुटभेदी पत्थर मिलेगा तथा आगे श्वेत मिट्टी और वहाँ ही एक पाश्चिमा शिरा और उसके बाद एक उत्तरा शिरा होगी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अश्वमन्तकस्य वामे वदरी वा दृश्यतेऽहिनिलया वा ।

षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धं पुरुषत्रये तोयम् ॥४३॥

कूर्म्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः सलिकता मृत् ।

आदौ शिरा च याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥४४॥

भा० टी०-जो वदरी वृक्ष या सर्पगृह अश्वमन्तक वृक्ष के उत्तर या बायें ओर हो तो जल उस अश्वमन्तक वृक्ष से ६ हाथ बाद साढ़े तीन पुरुष नीचे उत्तर दिशा में होता है । और इस चिह्न से उसको ज्ञात करें-प्रथम १ पुरुष खोदने पर कच्छप बाद में धूसर रंग का पत्थर होगा अन्त में बालुका युक्त मिट्टी मिल कर पहले दक्षिणा शिरा अन्त में ईशान कोण में बहनेवाली दूसरी शिरा मिलेगी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥



वामेन हारिद्रतरोर्वल्मीकश्चेत् ततो जलं पूर्वं ।

हस्तत्रितये पुरुषैः सज्यंशैः पञ्चभिर्भवति ॥४५॥

नीलोभुजगः पुरुषे मृत्पीता मरकतोयमाश्चाश्मा ।

कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या ॥४६॥

भा० टी०—यदि हरदी के वृद्धा से उत्तर ओर वल्मीक देख पड़े तो उस वृद्धा से पूर्व दिशा में जल ३ हाथ के बाद साढ़े पांच पुरुष के नीचे रहता है प्रथम वहाँ पर १ पुरुष के नीचे जज्ञ दिखाई पड़ेगा बाद पिली मिट्टी उसके बाद मरकत पत्थर मिलेगा तदनन्तर काली भूमि के बाद वहाँ पर प्रथम पाश्चिमा शिरा तथा दूसरी दाक्षिणा शिरा होगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि ।

वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥४७॥

भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादो च लक्ष्णानि चैव ।

नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बुयाम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥४८॥

भा० टी०—जलपरिहीन देश में जहाँ पर ये अनूप चिन्ह दिखाई पड़ें, वहाँ अधिक जल कहना चाहिये प्रथम उसके ऊपर वीरण दूर्वा हो तो वहाँ की भूमि अति कोमल होती है । और वहाँ पर १ पुरुष के नीचे जल रहता है तथा ब्रह्मदण्डी विधारा, वज्रदन्ती, केवाच, लक्ष्मणा, निवारी के वृद्धा हों उसके दक्षिण ओर जल दो हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे रहता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमाः समीपजलाः ।

सुषिरा जर्जरपत्रारुक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥४९॥

भा० टी०—जो वृद्धा चिकना, विशाल शाखाओं से युक्त, अतिशय छोटा तथा विस्तीर्ण हो उसके समीप जल रहता है और जो वृद्धा सारहीन, जर्जरपत्र तथा रूखे हैं उनके पास जल नहीं रहता ॥ ४९ ॥

तिलकाम्रातकवरुणकभस्मातकविल्वतिन्दुकाङ्गोलाः ।

पिण्डारशिरीषाञ्जनपरुषकावज्जुलातिवलाः ॥५०॥

एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतारततस्तोयम् ।

हस्तैस्त्रिभिर्हृत्तरतश्चतुर्भिर्धौन च नराणाम् ॥५१॥

भा० टी०—यदि तिलक, आम्रानक, भस्मातक, विल्वतिन्दुक, अङ्गोला, पिण्डार, शिरीष, अञ्जन वृद्धा, परुषक वृद्धा, वज्जुल अतिवला ये वृद्धा वल्मीक से युक्त हों अथवा वल्मीक इनके समीप हो तो इन वृद्धों के उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद साढ़े चार पुरुष के नीचे जल होता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥



अतृणो सतृणा यस्मिन् सतृणो तृणवर्जिता मही यत्र ।

तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं तस्मिन् ॥५२॥

भा० टी०—तृणरहित भूमि पर जहाँ तृण उपजा हो अथवा तृण संयुक्त भूमि पर जहाँ तृण न हों उस स्थान में जल तथा धन रहता है ॥ ५२ ॥

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽभस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।

खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥५३॥

भा० टी०—जहाँ पर कंटक वृक्ष में अकंटक वृक्ष हों अथवा अकंटक वृक्ष में कंटक वृक्ष हो उस वृक्ष के पश्चिम दिशा में ३ हाथ के सवा तीन पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ५३ ॥

नदति महीगंभीरं यस्मिन् चरणहताजलं तस्मिन् ।

सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौवेरो तत्र च शिरा स्यात् ॥५४॥

भा० टी०—जिस स्थान पर भूमि को चरण से मारने पर मधुर शब्द हो वहाँ उत्तरा शिरा ग्रहणी है और साढ़े तीन पुरुष खोदने पर जल रहता है ॥ ५४ ॥

वृक्षस्थैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।

विज्ञातव्यं शाखा तले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥ ५५ ॥

भा० टी०—यदि वृक्ष की एक शाखा झुकी हुई हो या पाण्डुवर्ण की होय तो उस डार के नीचे ३ पुरुष के नीचे जल है ऐसा जानना ॥ ५५ ॥

फलकुसुमविकारो यस्य पूर्वं शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।

भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता ॥५६॥

भा० टी०—जिस वृक्ष के नीचे फल को या पुष्प को अन्य किसी वृक्ष का विकार हो तो उस वृक्ष के पूर्व में तीन हाथ आगे ४ पुरुष खोदने पर जल है, प्रथम चिन्ह आधा पत्थर तथा पीन मिट्टी रहेगी ॥ ५६ ॥

यदि कंटकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः ।

तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषैश्च ॥ ५७ ॥

भा० टी०—यदि कंटक वृक्ष कांटे से रहित हो या सफेद फूल दिखाई पड़े तो उसके नीचे ३ साढ़े तीन पुरुष के बाद जल रहता है ॥ ५७ ॥

खजूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे ।

तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥ ५८ ॥

भा० टी०—जिम निर्जल देश में दो शिर का ( दो डार का ) खजूर का वृक्ष हो उस खजूर वृक्ष के पश्चिम में २ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ५८ ॥



यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा ।

सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽबु पुरुषद्वये भवति ॥ ५६ ॥

भा० टी०—यदि श्वेत पुष्प से युक्त कठचम्पा का वृक्ष अथवा पलास का वृक्ष रहे तो उस स्थान से जहां ये रहे कर्णिकार तथा पलाश वृक्ष से दक्षिण दिशा में २ हाथ के बाद २ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ५६ ॥

उष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुग्मे ।

निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥

भा० टी०—जहां पर गर्म पानी की भाप ( गर्मी ) या जहां पर धूम देख पड़े वहां पर २ पुरुष के नीचे बड़े वेग से बहनेवाली शिरा रहती है ॥ ६० ॥

यस्मिन् क्षेत्रे देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति ।

स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥ ६१ ॥

भा० टी०—जिस भूमि पर सस्य उग करके नाश हो जाती हो या जिस भूमि पर स्निग्ध अन्न बहुत होय या धान्य के पत्ते पीत वर्ण हो जावे उस भूमि पर महाशिरा विशेष जल प्रवाह से २ पुरुष नीचे बहती है ॥ ६१ ॥

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।

घोवाकरभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥ ६२ ॥

भा० टी०—जिस भूमि पर खूब पानी न बरसे तथा वह भूमि सुखी और रेतीली हो उसे मरुभूमि कहते हैं । उस भूमि में जिस प्रकार शिरा मालूम की जाती हैं, कहता हूं । उस देश में जल की शिरा ऊँट के गर्दन के समान भूमि में जाती है अर्थात् बहुत ही नीची होती है ॥ ६२ ॥

पूर्वोत्तरेण पीलोर्द्यदि बल्मीको जलं भवति पश्चात् ।

उत्तरगमना च शिरा विज्ञेयाः पंचभिः पुरुषैः ॥ ६३ ॥

चिह्नं दर्दुरादौ मृत् कपिलं तत्परे भवेद्धरिता ।

भवति च पुरुषद्वयेधोष्मा तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥ ६४ ॥

भा० टी०—जो पीलू ( अलरोट मेवा ) वृक्षों के ईशान में बल्मीक के मट्टी का ढेर लगा हो तो उस पीलू वृक्ष से पश्चिम ओर जल साढ़े चार के बाद ५ पुरुष नीचे रहता है । प्रथम तो खोदने पर मेटक के चिन्ह का निकलेगा बाद कपिलवर्ण मिट्टी मिलेगी तदनन्तर हरित वर्ण भूमि होगी और इन चिन्हों के बाद एक पत्थर के नीचे शिरा रहती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पीलोरेव प्राच्यां बल्मीकोऽतोऽर्धपञ्चमैर्हस्तैः ।

दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५ ॥



प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्तिश्च ।

दक्षिणतो वह शिरा सचारं भूमिपानीयम् ॥ ६६ ॥

भा० टी०—यद्यपि पीलू वृत्त से पश्चिम में बल्मीक देख पड़े तो उस पीलू वृत्त से दक्षिण दिशा में जल ४½ हाथ के बाद ७ पुरुष नीचे जल रहता है प्रथम चिन्ह १ पुरुष केवकेद और काले वर्णका १ हाथ का सर्प दिखाई पड़ेगा बाद में दक्षिण दिशा में बहने वाली शिरा होगी जो बहुत अंशों में जल बहाया करती है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

उत्तरतश्च करीरस्याहिग्रहं दक्षिणे जलं स्वादु ।

दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयः पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥

भा० टी०—जो करीर वृत्त से उत्तर ओर सर्पावास हो तो उस वृत्त से उत्तर दिशा में जल ४½ हाथ के बाद १० पुरुष नीचे रहता है और वह जल मीठा होता है वहाँ पर भी १ पुरुष खोदने के बाद पीतवर्ण मेढक निकलता है ॥ ६७ ॥

रोहितकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये ।

द्वादशपुरुषात् खात्वा सचारा पश्चिमेन शिरा ॥ ६८ ॥

भा० टी०—यदि सर्पावास बल्मीक रोहितक वृत्त से पश्चिम हो तो रोहितक वृत्त से तीन हाथ दक्षिण के बाद पश्चिमाभिमुख खारे जल की शिरा १२ पुरुष के नीचे मिलेगी ॥ ६८ ॥

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमेन शिरा हस्ते ।

खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥ ६९ ॥

भा० टी०—यदि बल्मीक अर्जुन वृत्त से पूर्व दिशा में देख पड़े तो उसी इन्द्र-तरो से १ हाथ के बाद १४ पुरुष खोदने पर पश्चिम ओर नीचे बहनेवाली शिरा मिलती है जिसमें कि १ पुरुष खोदने पर कपिल वर्ण की गोहिया मिलेगी ॥ ६९ ॥

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्दामतो भुजङ्गग्रहम् ।

हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये पञ्चदश नरा वसाने तु ॥ ७० ॥

क्षारं पयोत्रं नकुलो मानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा ।

रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ७१ ॥

भा० टी०—यदि अमलतास वृत्त के बायीं ओर ( उत्तर ) सर्पावास बल्मीक देख पड़े तो उस वृत्त से दक्षिण ओर जल २ हाथ के बाद १५ पुरुष खोदने से निकलता है वह खारा होता है प्रथम तो १ पुरुष नीचे नकुल तथा ताम्र वर्ण का पत्थर और रक्त-भूमि के बाद दक्षिण शिरा बहती है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

बदरी रोहितवृक्षौ सम्पत्तौ चेद्विनापि बल्मीकम् ।

हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥ ७२ ॥



सुरसं जलमादौ दक्षिणशिरा वहति चोत्तरेणान्या ।

पिष्टनिभः पाषाणो मृतश्वेता वृश्चिकोऽर्द्धनरे ॥ ७३ ॥

भा० टी०-जिस स्थान पर बैर का वृत्त रोहित वृत्त से मिले हुए हों और वहाँ पर वल्मीक हो या न हो तो उन वृत्तों के पश्चिम दिशा में ३ हाथ के बाद १६ पुरुष नीचे जल होता है यहाँ प्रथम १ पुरुष के बाद बिच्छू दिखाई पड़ेगी तदनन्तर प्रथम दक्षिण तथा द्वितीय उत्तराभिमुख मीठे पानी की शिरा बहती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

सकरीरा चेद्वदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः ।

अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ॥ ७४ ॥

भा० टी०-जो बैर तथा करीर वृत्त साथ साथ दिखाई दे तो उस वृत्त से पश्चिम दिशा में जल ३ हाथ दूरी के बाद १८ पुरुष के नीचे रहता है, वहाँ पर विशेष जल से युक्त शिरा ईशान कोण में बहती है ॥ ७४ ॥

पीलुसमेता वदरी हस्तत्रयसम्मिता दिशि प्राच्याम् ।

विंशत्यापुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सचारम् ॥ ७५ ॥

भा० टी०-वैर वृत्त यदि पीलू वृत्त से संयुक्त हो तो उस वृत्त से पूर्व ओर ३ हाथ दूरी के बाद २० पुरुष नीचे खारा तथा अशाध्य और प्रभूत (अत्यन्त) जल रहता है ॥ ७५ ॥

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभविल्वौ वा ।

हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥

भा० टी०-जहाँ पर ककुभ तथा करीर एक साथ हों अथवा जहाँ पर ककुभ और विल्व वृत्त एक साथ एकत्र हों तो उन वृत्तों से पश्चिम दिशा में २ हाथ के बाद ३५ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ७६ ॥

बल्मीकमूर्द्धनि यदा दूर्वाश्च कृशाश्च पाण्डुराः सन्ति ।

कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ ७७ ॥

भा० टी०-यदि बल्मीक के ऊपर कीदृश तथा कुश (ऊपज) पाण्डुर वर्ण हो जाया करे तो ठीक उस मध्य बल्मीक में ही कूप खोदने से २१ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ७७ ॥

भूमिः कदम्बकयुक्ता बल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा ।

हस्तत्रयेण याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥

भा० टी०-जहाँ पर भूमि कदम्ब वृत्त से युक्त हो तथा वहाँ पर दूर्वा बल्मीक युक्त देख पड़े तो उस कदम्ब वृत्त से दक्षिण दिशा में २ हाथ के बाद २५ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ७८ ॥



बल्मीकत्रयमध्ये रोहितकपादपो यदा भवति ।

नानावृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७६ ॥

हस्तचतुष्के मध्यात् षोडशभिश्चांगुलैरुदम्भारि ।

चत्वारिंशत्पुरुषात् खात्वाश्मातः शिरा भवति ॥ ८० ॥

भा० टी० - यदि रोहितक ( गुलनार ) वृक्ष के साथ अन्य वृक्ष तीन से अधिक हों और वे तीन बल्मीक के मध्य में हों तो वहाँ जल रहता है । उस रोहितक वृक्ष से जो बल्मीक के मध्य में हो उससे उत्तर दिशा में जल बहनेवाली शिरा ४ हाथ १६ अंगुल के बाद ४० पुरुष के नीचे बहा करती है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण बल्मीकः ।

पश्चात् पञ्चकरान्ते शताद्धसङ्ख्येनरैः सलिलम् ॥ ८१ ॥

भा० टी० - जिस स्थान पर शमी बहुत ग्रन्थि युक्त हो और बल्मीक यदि उसके उत्तर हो तो उस शमी वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ दूरी के बाद ५० पुरुष नीचे जल रहा करता है ॥ ८१ ॥

एकस्थाः पञ्च यदा बल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः ।

तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥ ८२ ॥

भा० टी० - जो एक ही स्थान पर ५ बल्मीक हों तो उन सब बल्मीकों में से पाँचवाँ मध्यस्थ होगा । यदि मध्यस्थ बल्मीक श्वेत हो तो उसी बल्मीक में ५५ पुरुष नीचे शिरा बहा करती है ॥ ८२ ॥

सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेषु मानवैः षष्ट्या ।

अर्धनरेऽहिप्रथमं सवालुका पीतमृत्परतः ॥ ८३ ॥

भा० टी० - जिस स्थान पर पलाशा तथा शमी वृक्ष युक्त हों तो उस वृक्ष के पश्चिम भाग में ५ हाथ के बाद ६० पुरुष नीचे जल रहा करता है । प्रथम तो आधा पुरुष के बाद बालू के सहित पीली मिट्टी होती है ॥ ८३ ॥

बल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहितको भवेद्यस्मिन् ।

पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८४ ॥

भा० टी० - जहाँ पर श्वेत रोहितक वृक्ष बल्मीक से युक्त हो उस स्थान पर रोहितक वृक्ष से पूर्व दिशा में १ हाथ के बाद ७० पुरुष नीचे जल रहा करता है ॥ ८४ ॥

श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः ।

नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥



भा० टी०—जहाँ पर श्वेत वर्ण तथा अधिक कोंटों से संयुक्त शमी वृक्ष हो तो उस शमी वृक्ष से दक्षिण दिशा में १ हाथ के बाद ७५ पुरुष के नीचे जल रहा करता है, जिस में आधा पुरुष खोदने पर सर्प रहता है ॥ ८५ ॥

**मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् ।**

**जम्बूवेतसपूर्वे ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥ ८६ ॥**

भा० टी०—मरु देश में जो चिह्न कहा गया है उसी चिह्न से स्वल्पोदक तथा पहाड़ी देशों में भी जल विचार न करना चाहिये । और जम्बू तथा वेतस वृक्ष द्वारा जो विचार कहा गया है उन्हीं चिह्नों से मरु देश में द्विगुणित नीचे जल कहना चाहिये ॥ ८६ ॥

**जम्बूस्त्रिवृता मूर्वा शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा ।**

**वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती च गरुडवेगा च ॥ ८७ ॥**

**सूकरिकमाषपर्णी व्याघ्रपदश्चेति यद्यहेर्निलये ।**

**वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥ ८८ ॥**

भा० टी०—जामुन, त्रिवृता, मोरवेल, शिशुमारी, सारिवा, हरीतक, श्यामा, पीपर, विरुधय, वाराही, मालकमुनी, गुरुच ( गरुड वेग ) से सूकरकंद ( सूकरिक ) वन उर्दी, व्याघ्रपदा आदि औषधी सर्पावास वल्मीक से युक्त हो तो उस वल्मीक से उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद ३ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

**एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः ।**

**एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥ ८९ ॥**

भा० टी०—यह ऊपर कहा हुआ बहुत जलवाले देश में रहता है और यही लक्षण थोड़े जलवाले देश में ५ पुरुष में रहता है और यही लक्षण निर्जल देश में रहने से जल ७ पुरुष नीचे रहता है ॥ ८९ ॥

**एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना ।**

**तस्या यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र ॥ ९० ॥**

भा० टी०—जिस स्थान पर पृथ्वी एक समान हो और तृण वृक्ष लतादि से हीन हो और उसी भूमि में यदि विकार पैदा हो जाय तो उस भूमि पर १५ पुरुष नीचे जल रहा करता है ॥ ९० ॥

**यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सानुनादिनी वा स्यात् ।**

**तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा ॥ ९१ ॥**

भा० टी०—जो भूमि स्निग्ध, नीची, बालुका युक्त तथा शब्द युक्त हो और शब्द करती हो तो उस भूमि में ४ या ५ पुरुष के बाद जल रहता है ॥ ९१ ॥



स्निग्धा तरुणा याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च ।

तरुगहनेऽपि विकृतो यस्तस्मात्तदेव वदेत् ॥ ६२ ॥

भा० टी०—जहाँ पर स्निग्धतरु अधिकांश होते हैं तो उन वृक्षों से दक्षिण दिशा में जल ४ पुरुष नीचे रहता है तो उन वृक्षों में भी जिसमें विकार ( अन्य वृक्ष के सदृश जल पुष्प ) पैदा हो जाय उसके भी दक्षिण ४ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ६२ ॥

नमते यत्र धरित्री सार्धं पुरुषेऽम्बुजाङ्गलानूपे ।

कीटा वा यत्र विना लयेन बहवोऽम्बु तत्रापि ॥ ६३ ॥

भा० टी०—जहाँ की भूमि पदाघात करने से नीची हो जाय ( नीचे को चली जाय ) तो चाहे बहूदक भूमि हो या न हो परन्तु उस भूमि पर १ पुरुष नीचे जल रहता है और जहाँ कीट या कृमि ( कीड़े मकोड़े ) बिना घास काँव वहाँ भी यही जाने ॥ ६३ ॥

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्बुभिर्नरैः सार्धैः ।

इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥ ६४ ॥

भा० टी०—जिस गरम प्रदेश में जहाँ की भूमि कुछ शीत हो या जहाँ पर कि शीत ही हो परन्तु कहीं गरम हो तो वहाँ ३ पुरुष नीचे जल रहता है और जांगलादि देश में जहाँ यह इन्द्र धनुषाकार या मत्स्य की तरह भूमि हो अथवा जहाँ पर वल्मीक हो वहाँ ४ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ६४ ॥

वल्मीकानां मध्याब्धे कोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः ।

शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः ॥ ६५ ॥

भा० टी०—जहाँ पर अधिकांश वल्मीक हों और उनमें एक वल्मीक ऊँचा हो तो उस उच्च वल्मीक के नीचे ४ हाथ के बाद शिरा होती है या जिस भूमि पर पैदा हुआ अनाज सूखा जाता हो या बीजांकुर उत्पन्न ही न हो उस स्थान पर भी ४ हाथ के नीचे जल रहता है केवल जाङ्गल तथा शून्य ही देश में ॥ ६५ ॥

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः ।

वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वान्यं शिरा चोदक् ॥ ६६ ॥

भा० टी०—वट ( न्यग्रोध ) पलाश गुल्जर ये तीनों जहाँ एक साथ पाये जाय वहाँ पर ३ हाथ के नीचे जल रहता है और वहाँ उत्तरा शिरा बहती है और वट पिप्पल का योग जहाँ पर हो वहाँ भी नीचे ३ हाथ पर जल होता है ॥ ६६ ॥

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः ।

नित्यं स करोति भयम् दाहं च स मानुषं प्रायः ॥ ६७ ॥

॥ अश्वत्थवटवृक्षस्य शमीपालाशमिश्रितैः । तत्र स्थाने कृतं कूपं पूर्णाम्बुप्रजायते ॥ १ ॥  
वल्मीकोन्दुर्दूरां शाल्मलीकण्टकं धनम् । तत्र स्थाने कृतं कूपं पूर्णाम्बु प्रजायते ॥ २ ॥



भा० टी०—जो कूप ग्राम के आग्नेय कोण में हो तो उस कूप से ग्रामवालों का नित्य भय रहेगा और प्रायः मनुष्य को उस कूप के कारण अग्नि भय करता है ॥९७॥

नैऋत्यकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये ।

दिक्त्रयमेतत्त्यक्स्वाशेषासु शुभावहाःकूपाः ॥ ९८ ॥

भा० टी०—और यदि कूप ग्राम के नैऋत्य कोण में हो तो बालकों को क्षय करता है वायव्य कोण में कूप हो तो स्त्रियों को भय करता है । अतएव कूप तीन कोणों को छोड़ सब दिशा में शुभप्रद है ॥ ९८ ॥

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य ।

आर्याभिःकृतमेतद्वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ९९ ॥

भा० टी०—बाराह मिहिर कहते हैं कि यह दकार्गल सारस्वत मुनि की रचनानुसार आर्या छन्द में कहा और अब मनुकृत दकार्गल की भिन्न २ छन्दों में कहेंगे ॥९९॥

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो निच्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति ।  
पद्मक्षुरोशीरकुलाःसगुण्डाःकासाःकुशावानलिका नलो वा १००।

खजूरजम्बवर्जुनवेतसाःस्युः क्षीरान्वितावाद्रुमगुल्मवल्लयः ।  
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाःस्युर्नक्तमालाश्चससिन्दुवाराः॥१०१॥

विभीतको वामदयन्ति का वा यत्रास्ति तस्मिन्पुरुषत्रयेऽम्भः ।  
स्यात्पर्वतस्योपरिपर्वतोऽन्यस्तत्रापिमूलेपुरुषत्रयेऽम्भः ॥१०२॥

भा० टी०—जिस स्थान पर शाखा के समूह लता स्निग्ध वृक्ष तथा छिद्र रहित पत्ते हों उस स्थान पर ३ पुरुष के नीचे शिरा रहती है अथवा जहाँ पर स्थल कमल गोखुर, खश, कचनार, नागरमोथा, काश, कुश सुगन्धऔषधी नरकट, खजूर, जामुन, अर्जुन, वेत, क्षीर, वृक्षगुल्म ( एक मूल शाखा समूह ) लताइम ( रतालू ) नाग ( नागकेशर ) शतपत्र ( कमल ) नीप वृक्ष विशेष नक्तमाल सिन्दुवार ( सेधुवार ) वृक्षसे युक्त हो वा बहेडा दमयन्ती जिस जगह हो वहाँ भी तीन पुरुष के नीचे जल रहता है और जहाँ पर्वत के ऊपर पर्वत रहता है वहाँ पर्वत के मूल में तीन पुरुष के नीचे जल रहता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

यामौञ्जिकैः काशकुशैश्चयुक्ता नीला च मृदु यत्र सशर्करा च ।  
तस्यां प्रभूतंसुरसं च तोयं कृष्णाथवा यत्र च रक्तमृदा ॥१०३॥

भा० टी०—जो भूमि मूँज काश कुशादि से संयुक्त हो और जो नीलवर्ण की मट्टी कणों से युक्त हो वहाँ उस भूमि के नीचे बहुत मीठा जल होता है और जिस भूमि की मिट्टी काली या लाल हो वहाँ भी स्वादिष्ट जल निकलता है ॥ १०३ ॥



सशर्करा ताम्रमही कषायं चारं धरित्री कपिला करोति ।

अपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥१०४॥

भा० टी०—जो ताम्र वर्ण की भूमि कंकड़ों से युक्त हो वहाँ का जल कषाय होता है और यदि कपिल वर्ण की भूमि हो तो चार जल देती है । पाण्डुर ( लाल रक्तेद ) वर्ण की भूमि हो तो निमक के स्वाद का जल होता है । तथा नीली भूमि हो तो मीठा जल देती है ॥ १०४ ॥

शाकाश्वकर्णार्जुनविल्वसर्जाः श्रीपण्यरिष्टा धवशिंशपाश्च ।

क्षिद्रैश्चपणैर्द्रुमगुल्मवल्ल्योरुक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥१०५॥

भा० टी०—यदि क्षिद्र रहित पत्तों से युक्त गुल्म तथा वल्ली के सहित शाक अश्वकर्ण अर्जुन विल्व सर्ज श्रीपण्य अरिष्ट धव शिंशपा ये वृक्ष हों तो वहाँ बहुत दूर नीचे जल रहता है ॥ १०५ ॥

सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा ।

रक्ताऽकुराक्षीरयुताः करीरा रक्ता धराचेज्जलमश्मनोऽधः ॥१०६॥

भा० टी०—जो भूमि सूर्य अग्नि भस्म उष्ट्र तथा गदहे की रंग की हो वह निर्जला होती है । जहाँ पर करीर वृक्ष रक्तवर्ण अंकुर तथा दूध वर्ण से युक्त हो तो वहाँ पर पत्थर के नीचे जल रहता है ॥ १०६ ॥

वैडूर्यमुद्राम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा ।

मृगाज्जनाभाकपिलाथवा या ज्ञेया शिलाभूरिसमीपतोया ॥१०७॥

भा० टी०—यदि पत्थर वैडूर्य मणि के तुल्य मुद्रा ( मूंग ) कृष्णवर्ण हो तथा पके गूलर फल के समान लाल हो या जिस पत्थर के तोड़ने से सुर्मा के वर्ण का चूर्ण हो वा सफेद हो, उस पत्थर के समीप बहुत जल है ऐसा जानो ॥ १०७ ॥

पारावतक्षौद्रघृतोपमा वा क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।

या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशुतोऽयंकुरुतेऽक्षयंच ॥१०८॥

भा० टी०—जो भूमि कवूतर के समान हो, मधु वा घृत के सदृश हो वा रेशमी वस्त्र के तुल्य हो अथवा जो भूमि सोम वल्ली (लता) के सदृश हो तो वह बहुत शीघ्र अक्षय जल को करती है ॥ १०८ ॥

ताम्रैः समेता पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा ।

भृङ्गोपमांगुष्ठिकपुष्पिका वा सूर्याग्निवर्णा च शिलावितोया ॥१०९॥

भा० टी०—जो पत्थर ताम्र वर्ण के पृषतर (तिलक) से युक्त हो वा नाना वर्ण के चिन्हों से अंकित हो वा जिस शिला का पाण्डु वर्ण अथवा भस्म ऊँट या गदहा के तुल्य रंग हो अथवा भ्रमर के समान हो वा अंगुष्ठ के घृत के फूल के तुल्य हो वा सूर्य अग्नि के सदृश हो वह शिला जल से रहित होती है ॥ १०९ ॥



चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा

याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्चनाभाः ।

सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्चः या स्यु-

स्ता शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥११०॥

भा० टी०-जो शिला चन्द्र कान्तिसमान स्फटिक तुल्य मोती के सदृश तथा सुवर्ण या इन्द्रनील मणि वा हिङ्गुलक (लाल) वर्ण के तुल्य हो वा अञ्जन सदृश कान्तिवाला वा सूर्योदय के समय सूर्य बिम्ब के तुल्य कान्तिवाला वा हरिताल के समान हो वह उत्तम है ये सब वृत्त (श्लोक) मुनिवचन हैं ॥ ११० ॥

एताह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च यच्चैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः ।

येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत् कदाचित् १११

भा० टी०-ये सब पूर्वोक्त शिला अभेद्य (तोड़ने योग्य नहीं) हैं। क्योंकि वे कल्याण करनेवाली हैं यक्षनाग से सेवित वे शिला जिस राजा के राज्य में होती हैं उस में कभी भी अवर्षण नहीं होता ॥ १११ ॥

भेदं यदानैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः सहितन्दुकानाम् ॥

प्रज्वालचैवानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ११२॥

भा० टी०-यदि शिला तोड़ने का विचार होय और वह न टूटै तो तत्काल तेंदु के छौर पलाश के काष्ठ को उसके ऊपर अग्नि जलावे। जब शिला लाल होय जाय तो उसको चूना के पानी से ठंडी करे तो शिला फूटती है ॥ ११२ ॥

तोयं शृतं मोक्षकभस्मना यत्तत्सप्तकृत्वः परिषेचनं च ॥

कार्यं शरचारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः ॥११३॥

भा० टी०-मोक्षक (मन्त्रक जंभीरी नीबू) वृक्ष के भस्म में गरम किया जल शर नामक वृण के भस्म को मिला कर गरम की हुई शिला को सात बार सोचे पुनः २ गरम करे और सोचे तो शिला फूटती है ॥११३॥

तक्रकाञ्चिकसुराः सकुलोत्था योजितानि वदराणि च तस्मिन् ॥

ससरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥११४॥

भा० टी०--मंठा कांजी मण कुलित्थ इन सबको एकत्र करके उसमें घेर डाले सात रात्रि एकत्र रख कर उससे गरम शिला को ठंडा करने से शिला फूटती है ॥११४॥

नैम्बं पत्रं त्वक् च नालं तिलानां सापामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुरुची ।

गोमूत्रेण स्नावितः चार एषां षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिष्यतेऽश्मा ११५



भा० टी०—नीम के पत्र और छाल तिलनाल चिचिड़ा तेंदुवा और गुरुच इनका भस्म गोमूत्र से युक्त करै उससे गरम किया पापाण छः बार पुनः पुनः गरम करके सींचने से फूटता है ॥११५॥

आर्कं पयो हुडविषाणमषीसमेतम्

पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः ।

टङ्कस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानम् ।

पश्चात् शितस्य न शिला सुभवेद्विघातः ॥११६॥

भा० टी०—मदार के दूध में मेढा के सींग की गख मिलावे फिर उसमें कपूर और चूहा के विष्टा को मिलावे उसका लेप जिस टांकी पर तेल मला हुआ हो उस पर लेप करे फिर उसको पानी से धोवे फिर घिस के चोख करे तो पत्थर के तोड़ने के समय टांकी नहीं टूटैगी ( यह अध्याय ५० श्लो० २५ में भी बागहमिहिराचार्य ने लिखा है वहां “टंकस्य” की जगह “शस्त्रस्य” लिखा है । अतः तलवार आदि पर भी यह क्रिया करने से तलवार आदि न टूटैगी ) ॥ ११६ ॥

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् ॥

सम्यक्क्षितं चाश्मनि नैतिभङ्गं न चान्यलोहेष्वपितस्य कौण्ड्यम्

भा० टी०—केला का क्षार ( राख ) मंठे से युक्त करके अहोरात्र एकत्र रक्खे फिर उस पानी को जिस लोह के शस्त्र ( तलवार बरखी छूरी टांकी आदि ) को खूब पिलावे अर्थात् खूब भिगोवे तो वह पत्थर पर तथा अन्य लोहपर कुंठित न होगा ॥११७॥

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योतरा

कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः ।

तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां संपातमावारयेत्

पाषाणादिभिरेव वा प्रति चयं चुण्णं द्विपाश्वादिभिः ११८

भा० टी०—पूर्व पश्चिम पाली (कूप, पोखरा, बावली) बहुत दिन जल धारण करते हैं, दक्षिण उत्तर दिशा में बहुत दिन नहीं रहते हैं । क्योंकि वायु प्रेरित तरंगों से उसका विशेष विदारण होता है, ऐसे कूप को जो बनाने की इच्छा करे वह जिधर जलतरंग जाते होयें उधर टढ़ काष्ठ से वा पत्थर से अथवा ईंट मूँज से जल पतन स्थल को बनावे द्विपद ( अश्व गज ऊँट बैज्ञ आदि ) के समूह से उस स्थान को मर्दन करावे तो मजबूत होता है ॥११८॥

ककुंभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः ।

कुरवकतालाशोकमधूकैर्वकुलमिश्रैश्चावृततीरा ॥ ११९ ॥



भा० टी०--अर्द्ध न वट आम पाकर इमिली कदंब वेत नीम जामुन कटसरई ताड़ अशोक महुवा मौसरी यह वृक्ष जलाशय के तट पर लगाना ॥११९॥

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यशिलासंज्ञितवारिमार्गम् ।

कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांसुभिरावपेत्ताम् ॥१२०॥

भा० टी०--बावली तालाब या बड़े कूप आदि में पानी आने के लिये पत्थर से सुट्टा नाली नहर बनवावे, उसके ऊपर रक्षार्थ छिद्र रहित केवाड़ लगाना और मृत्तिका से आच्छादित करना चाहिए ॥ १२० ॥

अञ्जनमुस्तोशीरः सराजकोशातकामलकचूर्णैः ॥

कनकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत् ।

तदनेन भवत्यमलं सुरसं, सुन्धिगुणैरपरैश्च युतम् ॥१२२॥

भा० टी०--अंजन ( कुटकी वा० काला कपास ) नागरमोथा खस वनतरोई वा बड़ी तरोई इनका चूर्ण और कनक फल ( निर्मली का बीज ) को एकत्र करके कूप में छोड़े उससे मैला कटुतार नीरस अशुभ गन्ध वाला भी जल स्वच्छ सुरस सुगन्धि इस गुण से और अपरगुण से भी युक्त होता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः ।

शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ १२३ ॥

भा० टी०--हस्त मघा अनुराधा पुष्य धनिष्ठा तीनों उत्तरा रोहिणी और शतभिषा नक्षत्र कूपारम्भ में शुभप्रद हैं ॥ १२३ ॥

कृत्वा वरुणस्य वलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने ।

कुसुमैर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत् प्रथमम् ॥१२४॥

भा० टी०--वरुण का वलि दंकर वट तथा बेज का काल गंध पुष्प और धूप से पूजन करके प्रथम स्थापना करें ॥ १२४ ॥

मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं

ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादिदृष्ट्या ।

भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं

सम्यग्बराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥१२५॥

भा० टी०--मेघोद्भव जल को जेठ मास की पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो उसे देख बलदेव के मत से पहले हमने २३ वें अध्याय में कहा है भूमि सम्यग्बराह दूसरा दकार्गल ( जल देखना ) हमने बराहमिहिर मुनि की कृपा से कहा है ॥१२५॥



- कूपचक्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मयामले ।  
 रोहिण्यादि लिखेच्चक्रं यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ॥१२६॥  
 एकमध्ये द्वयं पूर्वं ह्याग्नेय्यां च त्रयं तथा ।  
 याम्ये बाणस्थितं चैव नैऋत्ये रसमेव च ॥१२७॥  
 पश्चिमे युग्मवायव्यां चोत्तरे त्रीणि दापयेत् ।  
 ईशाने च त्रयं दद्यात् ब्रह्मऋक्षादनुक्रमात् ॥१२८॥  
 मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वं भूमिश्च खण्डिता ।  
 आग्नेय्यां स जलं प्रोक्तं याम्ये च निर्जलं भवेत् ॥१२९॥  
 नैऋत्ये सुजलं प्रोक्तं पश्चिमे शोभनं जलम् ।  
 वायव्ये चैव पाषाणं उत्तरे च समुद्रवत् ॥ १३० ॥  
 ईशाने मनसा सिद्धिर्वापीकूपस्य लक्षणम् ।

भा० टी०-कूप का चक्र ब्रह्मयामल में जैसा कहा है वैसा कहता हूँ । रोहिणी से लेकर चन्द्र नक्षत्र तक गिने, चक्र में इस प्रकार स्थापित करें । मध्य में १, पूर्व में २, अग्निकोण में ३, दक्षिण दिशा में ५, नैऋत्य में ६, पश्चिम में २, वायव्य में २, उत्तर में ३, और ईशान में ३ रोहिणी नक्षत्र से क्रम से दें । मध्य में शीघ्र स्वादु जल, पूर्व में खण्डित भूमि, अग्निकोण में जल, दक्षिण में निर्जल, नैऋत्य में सुन्दर जल, पश्चिम में शोभन जल, वायव्य में पाषाण, उत्तर में समुद्रवत् अथाह जल, ईशान में मनसा सिद्धि बावली कूप के जलके लक्षण को जाने ॥ १२६-१३० ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादौ तीक्ष्णं श्रुश्रुचाम्बुकः स्मृतः ।

तस्मात्सूर्यर्चतो मुख्यं कूपचक्रं विचारयेत् ॥१३१॥

भा० टी०-वेद स्मृति पुराण आदि में सूर्य को जलदाता बताया है । इससे सूर्य के नक्षत्र

- \* कूपचक्रं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं चारियामले ।  
 धृत्ताकारं लिखेच्चक्रं मध्ये त्रीणि प्रदापयेत् ॥१॥  
 रोहिण्यादीनि गणयेद्यावत् तिष्ठति चन्द्रमाः ॥  
 पूर्वदिग्दृष्टिमार्गेण त्रीणि त्रीणि प्रदापयेत् ॥२॥  
 मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वे भूमिस्तु खण्डिता ॥  
 आग्नेय्यां सजलं प्रोक्तं याम्ये च निर्जलं स्मृतम् ॥३॥  
 नैऋते चामृतं वारि पश्चिमे सजलं स्मृतम् ॥  
 वायव्ये च जलं हन्ति उत्तरे चामृतं जलम् ॥४॥  
 ईशान्यां कटुकं क्षारं कूपचक्रं न शंस्यः ॥५॥



से इस कूपचक्र को अवश्य विचारे सूर्य का विचार मुख्य है अन्य विचार गौण हैं १३१

**सूर्यभुक्ताच्च नक्षत्राद् गणयेद्दिनभावधि ।**

**चतुर्भिश्च हरेद्भागं शेषं फलविचिन्तनम् ॥१३२॥**

**जलकृन्मृत्युकृच्चैव क्षयकृत्कलहस्तथा ॥**

**एते योगाः समाख्याताः कूपे चैव विचारयेत् ॥१३३॥**

भा० टी०—सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिने उसमें ४ का भाग देव शेष के अनुसार फल जाने । यदि १ शेष बचे तो जल करनेवाला २ बचे तो मृत्यु करनेवाला, ३ बचे तो क्षय करने वाला और ४ बचे तो कलह करनेवाला होता है ( जो सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र १।५।६।१३।१७.२१।२४ ही श्रेष्ठ है ) ॥१३२॥१३३॥

**\* कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः**

**स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिस्त्रिभिः ।**

**स्वल्पं जलं स्वादु जलं जलक्षयं**

**स्वादूदकं क्षीरजलं च मिश्रितम् ॥१३४॥**

**मिष्टं जलं क्षीरजलं क्रमेण वै**

**पुरातनैरुक्तमिति प्रवीणैः ।**

भा० टी०—सूर्य के नक्षत्र से कूपचक्र को कहते हैं—सूर्य के नक्षत्र से यदि कूपारम्भ करने का नक्षत्र ३ नक्षत्रपर्यन्त मध्य के नक्षत्र हैं तो इसमें कूप करने से स्वादिष्ट जल होता है फिर पूर्वादिदिशा के तीन २ नक्षत्र हैं, मध्यगत नक्षत्र के बाद ३ नक्षत्र पूर्व के स्वल्प जल करनेवाले हैं, फिर ३ नक्षत्र अग्निकोण के स्वादु जल करनेवाले, फिर ३ नक्षत्र दक्षिण के जलनाशक हैं, फिर ३ नक्षत्र नैऋत्य कोण को स्वादिष्ट जलप्रद हैं, फिर ३ नक्षत्र पश्चिम के दुग्ध सदृश जल करनेवाले हैं, फिर ३ नक्षत्र वायव्य के अनेक प्रकार के जल देनेवाले हैं, फिर ३ नक्षत्र उत्तर के मीठे जल को करनेवाले हैं, फिर ३ नक्षत्र ईशान कोण के क्षीर जलकारक हैं ॥ १३४ ॥

ॐ कूपचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा देवज्ञभाषितम् ।

चक्राकारं लिखेच्चक्रं त्रीणि मध्ये प्रदापयेत् ॥१॥

अर्कभालिङ्ग्यते चक्रं यावच्च दिनभात्रधि ॥

त्रोणि त्रीणि ततो दद्यात्पूर्वादिदक्षिणे पथि ॥२॥

मध्ये स्वादु जलं प्रोक्तं पूर्वं तु चामृतं समम् ॥

आनेद्यां च पतिं हन्याद् दक्षिणे चामृतं जलम् ॥३॥

नैऋत्ये उदकं क्षारं पश्चिमे स्वल्पमेव च ॥

वायव्यामुदकं स्वल्पं चोत्तरे शुभदं तथा ॥४॥

ईशाने जलनाशं स्यात् कूपस्थाने विचारयेत् ॥५॥



भौमनक्षत्रात् कूपचक्रम् ।

\*रात्रीशाब्धिगुणाग्निवेददहनं रामाग्नि रामस्तथा

ताराभौमभतो जलाजलमथो स्वादुःसुखण्डं तथा

पीयूषो जलशोषणं शुभजलं चारं सुपूर्णजलम्

गर्गाचार्यपराशरप्रभृतयः प्राप्ताम्बुचक्रक्रमात् ॥१३५॥

भा० टी०—मंगल के नक्षत्र से जिस दिन कूपारम्भ का मुहूर्त हो उसको गिने यदि १ हो तो जल फिर ४ तक अजल, फिर ३ नक्षत्र तक स्वादु जल, फिर ३ खंड जल फिर ४ नक्षत्र तक अमृत जल, फिर ३ नक्षत्र तक शुद्ध जल, फिर ३ नक्षत्र तक शुष्क जल, फिर ३ नक्षत्र तक चार जल, फिर ३ नक्षत्र तक सुपूर्ण जल होता है ॥१३५॥

जीवभाःकूपचक्रम् ।

पञ्चवाणशरसप्तपञ्चभम्

जीवभादशुभशोभनं स्मृतम् ।

कूपचक्रमिति मैत्रवासवे

तोयपार्कध्रुवपिन्धमे शुभम् ॥१३६॥

भा० टी०—कूपचक्र में वृहस्पति के नक्षत्र से ५ नक्षत्र में कूपारम्भ करने से अशुभ फिर ५ में शुभ, फिर ५ में अशुभ, वाद ७ में शोभन, फिर ५ में अशुभ है और अनुगधा धनिष्ठा शतभिषा हस्त ध्रुव ( तीनों उत्तरा रोहिणी ) और मघा में कूपारम्भ शुभ है ॥ १३६ ॥

राहुभाधदकार्गलचक्रम् ।

पञ्चाग्निरामाग्नियुगाब्धिद्वयग्निभं

शुभाशुभं राहुभतः क्रमेण वै ।

ध्रुवाम्बुपार्कत्यभमित्र वासवे

मित्रे शुभं स्यात्तु सदाम्बुचक्रे ॥ १३७ ॥

ॐ भौमभाचन्द्र दिक्पञ्च सप्त चत्वारि शनि च ॥

अशुभानि शुभानि स्युर्विज्ञेयानि त्रिचक्षणैः ॥१॥

तथा—

शशिशराब्धित्रिष्यब्धिगुणाब्ध्ये वधजलेषु समिद्धिरभङ्गदम ।

सत्रयमिद्धिशौर्यत्रमिद्धये जलमिभङ्गकरः कुजभादिषु ॥२॥



भा० टी०—राहु के नक्षत्र से कूपचक्र को कहता हूँ, राहु के नक्षत्र से ५ नक्षत्र में कूपारम्भ करने से शुभ फल, फिर ३ नक्षत्र में अशुभ, फिर ३ में शुभ, फिर ३ में अशुभ, फिर ४ में शुभ, फिर ४ में अशुभ, फिर २ में शुभ, फिर ३ नक्षत्र में अशुभ फल होता है ॥१३७॥

कूपारम्भे मासाः ।

मार्गे माघे च वैशाखे ज्येष्ठेऽन्त्येऽपि च कार्तिके ।

कूपवाप्यादिकारम्भे मासाः स्युश्चोत्तमाः शुभाः ॥१३८॥

भा० टी०—कूप वापी तड़ाग को अग्नौ माघ वैशाख ज्येष्ठ फाल्गुन कार्तिक मास में आरंभ करना उत्तम शुभ है ॥१३८॥

कूपारम्भे तिथ्यादिनिर्णयः ।

तृतीया पञ्चमी चैव सप्तमी दशमी तथा ।

अष्टम्येकादशी चैव कूपारम्भे सुशोभना ॥१३९॥

रिक्तामाप्रतिपत्कृष्णे वर्जितान्ये च मध्यमाः ।

रविवारे जलं नास्ति चन्द्रे पूर्णजलं शुभम् ॥१४०॥

भूसुते बालुका चैव चन्द्रपुत्रे जलं बहु ।

वाक्पतौ मिष्टतोयं च क्षारं चैव भृगोर्दिने ॥१४१॥

शनौ च जलहानिः स्याद् वारजं फलमीदृशम् ।

\*हस्तपुष्ये ध्रुवे तोयेऽनुराधावासवेम्बुपे ॥१४२॥

मघायां च मृगे चान्त्ये शुभे कूपादिकर्मसु ।

भा० टी०—कूपारम्भ करना ३५।७।१०।११ तिथि में उत्तम है, रिक्ता ४।९।१४ तथा कृष्ण पक्ष में अमावस तथा प्रतिपदा निषेध है, शेष तिथि मध्यम है ॥१३९॥१४२॥

\* चित्रायां च तथा स्वातौ मूले चैव पुनर्वसौ ॥

अश्विन्यां च तथा कार्यं श्रवणेऽपि शुभं तथा ॥१॥

हस्तपुष्यध्रुवादीनि त्रयोदशमितानि च ॥

भानि चोत्तमसंज्ञानि पूर्वोक्तानि च सूरिभिः ॥२॥

चित्रादि यानि चोक्तानि मध्यमानि भवन्ति हि ॥

आवश्यकैऽपि प्राद्याणि केषांचिन्मतमीदृशम् ॥३॥



सूर्य वार में कूपारम्भ करने से जल नहीं होता, चन्द्रवार में पूर्ण जल होता है, मंगलवार में बालू होता है, बुधवार में बहुत जल है, गुरुवार को मीठा जल होता है, शुक्रवार में क्षार जल होता है और शनिवार में कूपारम्भ करने से हानि होती है। इस प्रकार वार से जायमान फल है।

हस्त, पुष्य ध्रुव ( रोहिणी तीनों उत्तरा ) पूर्वाषाढ़ अनुराधा धनिष्ठा शतभिषा मघा मृगशिरा और रेवती नक्षत्र में कूपारम्भ करना शुभ है ॥१४२॥

**लग्नेशशांकोऽथ जलोदये वा पूर्णः शशी केन्द्रगतो व्यये वा ॥**

**लग्नेऽथ जीवोभृगुजेऽथ सौम्ये जलं चिरस्थं सुरसं सुगंधमः ॥१४३॥**

भा० टी०—जन्म में चन्द्रमा हो वा जलचर राशि में हो अथवा पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र में वा व्यय में होय, लग्न में गुरु शुक्र बुध होय तो बहुत कालतक रहनेवाला सुरस सुगंध जल होता है ॥ १४३ ॥

**कुजे तृतीये भृगुजेऽस्तगे च षष्ठे रवौ लाभगतेऽर्कपुत्रे ।**

**चन्द्रेऽष्टषष्ठे व्ययवर्जिते च प्रियं जलं तद्भवतीह चित्रम् ॥१४४॥**

भा० टी०—मंगल तीसरे शुक्र सातवें सूर्य छठें शनि ग्यारहवें होय चंद्रमा अष्टम षष्ठ व्ययस्थान को छोड़ कर होय तो प्रिय उत्तम जल होता है ॥ १४४ ॥

**सौरे तृतीये मदने च चंद्रे षष्ठे रवौ लाभगते च भौमे ॥**

**केन्द्रे शुभैश्चाष्टमवर्जितैश्च जलं स्थिरं स्याद्धनपुत्रदञ्च ॥१४५॥**

भा० टी०—शनि तीसरे चन्द्रमा सातवें सूर्य छठें मंगल लाभ में होय केन्द्रमें शुभ ग्रह अष्टम ग्रह से रहित हो तो धन पुत्र का देनेवाला स्थिर जल होता है ॥ १४५ ॥

**केन्द्रे त्रिकोणेऽष्टशुभस्थितेषु पापेषु केन्द्रायविवर्जितेषु ।**

**सर्वेषु कार्येषु शुभं वदन्ति प्रसादकूपादितङ्गागवाप्याम् ॥१४६॥**

भा० टी०—केन्द्र १४।१।१० में त्रिकोण ५।९ में और अष्टम में शुभ ग्रह स्थित होय और पापग्रह से केन्द्र अष्टम वर्जित होय तो प्रसाद ( राजगृह, देवालय, अटारी ) कूप तङ्गाग वापी ( बौली ) आदि कार्य में शुभ होता है ॥ १४६ ॥

**चन्द्रोदये तद्विसेसुरेज्ये केन्द्रस्थिते चोपचयैः खलैश्च ।**

**उद्यानकूपादितङ्गागवापिजलाशयानां करणं प्रशस्तम् ॥१४७॥**

भा० टी०—चन्द्रमा लग्न में होय चन्द्रवार होय बृहस्पति केन्द्र में होय और उपचय स्थान में पाप ग्रह होय तो वगीचा कूप तङ्गाग वापी आदि जलाशय का आरम्भ करना शुभप्रद है ॥ १४७ ॥

**सर्वेषु लग्नेषु शुभं वदन्ति विहाय सिंहालिधनुर्धराश्च ।**

**ग्रहासतालोकनयोगयोगात्तदा प्रकुर्याज्जलभांशवर्गे ॥१४८॥**



भा० टी०—सिंह वृश्चिक धन लग्न को छोड़ कर सब लग्न को शुभ ग्रह देखते होयें योगाधियोग होय जलचर राशि जलचर राशि का वर्ग होय तब जलाशय रंभ करना शुभ है ॥ १४८ ॥

चतुर्थाष्टमगैःपापैर्जललग्ने वा खलग्रहे ।

चन्द्रेऽष्टमे तदा कर्ताश्रीपतेर्मासमध्यतः ॥ १४९ ॥

भा० टी०—यदि चौथे आठवें पापग्रह होय जल लग्न में पापग्रह होय चन्द्रमा अष्टम होय तो कृपादि जलाशय का बनानेवाला एक मास के बीच में मरे ॥ १४९ ॥

केन्द्रे पापग्रहैर्युक्ते अष्टमे च व्ययेपि वा ।

धर्मस्थानगतैर्वापि तज्जंक्षीयते चिरात् ॥ १५० ॥

केन्द्रगैः सौरिभौमाकैरष्टमस्थे निशाकरे ।

तज्जलं वर्षमध्ये तु न तिष्ठति जलाशये ॥ १५१ ॥

भा० टी०—केन्द्र में पापग्रह से युक्त हो अष्टम तथा व्यय भी पापग्रह युक्त होय धर्म स्थान में भी प्राप्त होय तो वह जल चिरकाल में क्षीय होय, केन्द्र में शनि मंगल सूर्य होय अष्टम चन्द्रमा होय वह जल जलाशय में एक वर्ष भी नहीं रहता है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

सर्वासु दिक्षु सलिलं प्रकुर्व्याद्विहाय नैऋत्ययमाग्निवायून् ॥

पूर्वोत्तरेऽनजलेशदिक्षु कृतं जलं सौख्यसुतप्रदः स्यात् ॥ १५२ ॥

तडागपुष्करोदयानमण्डपानां यथा क्रमम् ।

भा० टी०—नैऋत्य दक्षिण अग्नि वायव्य इन दिशा विदेशों को छोड़ कर सब दिशाओं में कूप बावली तडाग बनावे, पूर्व उत्तर ईशान और पश्चिम दिशा में जलाशय करने से वह जलाशय सुख पुत्र का देनेवाला होगा । और तडाग के पूर्व पुष्करिणी के उत्तर वाग के ईशान और मंडप के पश्चिम में यदि कूप हो तो सुत सुख देता है ॥ १५२ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे —

पुरादधुताशानिलराक्षसाशामुक्तान्यकाष्ठासु सुवारिदोऽधुः ॥

वानीरदुर्वाकुश्वामलूरक्षोण्यां भवेत् स्वादुजलं च शोघम् १५३

भा० टी०—पुरसे अग्निकोण वायुकोण नैऋत्यकोण को त्याग करके अन्य दिशा में भी कूप हो तो सुन्दर जलवाला और सुन्दर फल देनेवाला होता है ॥ १५३ ॥

अघार्जुनोदुम्बरसिन्धुवाराः पर्याप्रवालातिविशालशाखाः ।

वल्मीकपार्श्वार्स्फुरगाहिपत्रतत्राम्बुनिर्देश्यमलं समासु १५४

भा० टी०—अय अर्जुन उदुम्बर सैन्धुवा पण मृंगा का विशाल वल्मीक का समीप जहां जल सुन्दर जानै ॥ १५४ ॥



चन्द्रवासज्ञानम् ।

\* तिथिः पञ्चगुणा कार्यावारर्चेण समन्विता ।

वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१५५॥

एकशेषे वसेत् स्वर्गे द्विशेषे तु रसातले ।

त्रिशेषे मृत्युलोके च चन्द्रवासः प्रजायते ॥१५६॥

रसातले यदा चन्द्रः पञ्च कर्माणि वर्जयेत् ।

कूपवाप्यादिकारम्भे जलं नैव च जायते ॥१५७॥

बीजोत्तौ बीजनाशः स्याद्यात्रायां कार्यनाशकृत् ।

विद्यारम्भे भवेन्मूर्खस्तस्माच्चन्द्रं विचारयेत् ॥१५८॥

भा० टी०—कूपारम्भ की तिथि को ५ से गुणो उसमें वार और नक्षत्र मिलावे फिर उसमें ३ का भाग देवे शेष के अनुसार फल कहे, १ शेष में चन्द्रवास स्वर्ग में, २ शेष में पाताल में तथा शून्य शेष प्राप्त होने पर मृत्युलोक में चन्द्रमा का वास रहता है। पाताल में चन्द्रमा रहने से पांच कार्य वर्जित करें, कूप वापी तड़ाग का आरंभ नहीं होता है, बीजवोने से बीज का नाश होता है, यात्रा करने से कार्य की हानि होती है, विद्यारम्भ करने से मूर्ख होता है, ॥ १५५॥१५६॥१५७॥१५८ ॥

उदाहरण—माघ शुदी ५ गुरु वार रेवती नक्षत्र है। तिथि ५ को ५ से गुणो तो गुणफल २५ हुआ इसमें वार २ नक्षत्र २७ मिलाया तो ५४ हुआ इसमें ३ का भाग देने से शेष ० मिला अतः मृत्युलोक में चन्द्रमा है यह निश्चय हुआ ॥

जलविचारः ।

卐 वर्तमाने च नक्षत्रे तिथिश्चैव समन्विता ।

चतुर्भिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१५६॥

\* तिथिपञ्चगुणीकृत्य एकमेव समन्वितम् ।

वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषं चन्द्रविनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

एके च वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।

शून्ये तु मृत्युलोके स्थुः स्यादेवं चन्द्रविनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

तथा च मातृप्रसादः ।

द्वितीयायां च पञ्चम्यामष्टम्यां विश्वके तिथौ ।

चतुर्दश्यां च वसति पाताले रजनीपतिः ॥ ३ ॥

कूपवापीतड़ागानामारम्भोपवने तथा ।

यात्राविद्यादिकारम्भः पातालैन्दौ न कारयेत् ॥ ४ ॥

卐 तिथिवारं च नक्षत्रं चैकीकृत्य मुनेर्भजेत् ।

चैकशेषे नागलोके द्विशेषे सलिले जलम् ॥ १ ॥



एकशेषे जलं नास्ति द्विशेषे बहुलं जलम् ।

तृतीये तु जलं पूर्णं शून्ये शून्यजलं भवेत् ॥१६०॥

भा० टी०—वर्तमान नक्षत्र में तिथि को मिलावे फिर उस में ४ का भाग देय शेष के अनुसार फल कहे । १ शेष में जल नहीं होगा २ में बहुत जल होगा, ३ में पूर्ण जल होगा ॥ १५६ ॥ १६० ॥

प्रकारान्तरेणाजलज्ञानम् ।

तिथिवारं च नक्षत्रं वेदाढ्यं च वसूद्धृतम् ।

शेषात् पूर्वार्धितो दिक्षु निर्भरः कूपकर्मणि ॥१६१॥

भा० टी०—तिथि वार और नक्षत्र जो कूपारम्भ के दिन का होय उसमें ४ मिलावे फिर उसमें ८ का भाग देने से जो शेष बचे, उसके अनुसार पूर्वार्ध दिशा में निर्भर (सोती) कूप के कार्य में जाने ॥ १६१ ॥

पुनः जलज्ञानं ।

\* नग्रामदिक्स्वरं चैक्यं सूर्यर्क्षेण समन्वितम् ।

नागैश्च विभजेद् विद्वान् पूर्वार्धो जलदिग्भवेत् ॥१६२॥

भा० टी०—कूप बनानेवाले का नाम ग्राम दिशा के स्वरको एकत्र करे और उसमें सूर्य नक्षत्र से युक्त करे फिर विद्वान् उसमें आठका भाग देवे एक आदि शेष के अनुसार पूर्वार्ध दिशा में जल होगा ॥ १६२ ॥

उदाहरण—नाम स्वर उदितितारायण का ८ है ग्रामस्वर सहावावाद का २ है दिक्स्वर ईशान का २ है इसको एकत्र किया तो १२ हुआ इसमें धनिष्ठा के सूर्य में कूप बनाना है वह अश्विनी से २३ है । इसको पूर्व सम्मिलित संख्या १२ में युक्त किया तो ३५ हुआ इसमें ८ का भाग देने से शेष ३ मिले अतः दक्षिण में जल की सोती मिलेगी ॥

राशितो जलज्ञानम्—

तृचतुष्पदकीटाप्याज्जलहस्तप्रमाणकम् ।

नृराशौ तु चतुर्विंशे द्वाविंशे च चतुष्पदे ॥१६३॥

कीटे तथोनविंशाख्ये अष्टाविंशे च वारिभे ।

कूपवाप्यादिकार्येषु जलयोगं विनिर्दिशेत् ॥१६४॥

त्रिशेषे शून्यशेषे च भूमौ चास्ति जलं तदा ।

कूपवाप्यादिकारम्भाः प्रशस्ता मुनिभिः स्मृता ॥ २ ॥

जलज्ञानम्—

\* तिथिवारं च नक्षत्रं लानं चैक्यं वसूद्धृतम् ।

शेषे पूर्वार्धितो ज्ञेयं निर्भरो जलकर्मणि ॥



भा० टी०—कूपारम्भ के समय मनुष्य चतुष्पद कीट जलचर राशि के अनुसार जल का हस्त प्रमाण कहते हैं, मनुष्यराशि में २४ हाथ पर जल, चतुष्पद राशि में २२ हाथ के नीचे, कीटराशि में १९ हाथ के नीचे और जलचर राशि में २८ हाथ के नीचे कूप वापी आदि में जल जाने ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

**तिथिवारं च नक्षत्रं नामाक्षरसमन्वितम् ।**

**अष्टभिर्गुणितं चैव षट्त्रिंशेन विभाजितम् ॥१६५॥**

**हस्तशेषप्रमाणेन जलं प्रोक्तं पुरातनैः ।**

भा० टी०—कूपारम्भ के दिन की तिथि वार नक्षत्र और कूप बनानेवाले के नामाक्षर संख्या को एकत्र जोड़ें फिर उस को ८ से गुणें उसमें ३६ का भाग देय शेष के अनुसार हस्त पर जल कहें ॥ १६५ ॥

उदाहरण—तिथि ५ वार गुरु ५ नक्षत्र रेवती २७ नामाक्षर “राधारमण” का ५ सब एकत्र जोड़ा तो ४२ हुआ इस को ८ से गुणा तो ३३६ हुआ इस में ३६ का भाग दिया तो शेष १२ बजे अतः १२ हाथ के नीचे जल जानें ॥

**कूपादिमृत्तिकाज्ञानम्—**

**द्विगुणं दिक्स्वरं कृत्वा ग्रामस्वरसमन्वितम् ।**

**वसुभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१६६॥**

**कृष्णा पीतारुणा शुभ्राकङ्करंघोद्विलं तथा ।**

**बालुका निर्मला चैव इत्युक्तं ब्रह्मयामले ॥ १६७ ॥**

भा० टी०—कूप की दिशा की संख्या को दो से गुणें उस में ग्राम के स्वर को मिलावे फिर ८ का भाग देने से जो एकादि शेष बचे उस के अनुसार क्रम से १ कृष्णा (काली) २ पीली, ३ लाल, ४ सफेद, ५ कंकड़, ६ घोंघिल, ७ बालू, तथा ८ साफ मिट्टी जाने ऐसा ब्रह्मयामल में कहा है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

**प्रकारान्तरेण मृत्तिकाज्ञानम्—**

**नक्षत्रं तिथिवारं च कर्तुर्नामाक्षरैर्युतम् ।**

**वेदैश्च विभजेद्धीमान् शेषाङ्केन फलं वदेत् ॥१६८॥**

**एकशेषे जलं पूर्णं द्विशेषे कर्करा भवेत् ।**

**बालुका वह्निशेषे स्याच्छून्ये शून्यफलं भवेत् ॥१६९॥**

भा० टी०—कूपादि • जलाशयारंभ तिथि वार नक्षत्र और बनानेवाले के नाम के अक्षर की संख्या को एकत्र जोड़ें उसमें ४ का भाग देय शेष अंक के अनुसार फल जाने १ शेष में पूर्ण जल, २ शेष में कर्करा, ३ शेष में बालू और शून्य शेष में शून्य फल जाने ॥ १६८-१६९ ॥



दीपद्वारा जलशस्थाननिर्णयः-

ईशानादिचतुर्दिक्षु दीपं प्रज्वालयेद्बुधः ।

दीपः कर्दम संलग्नस्तत्राम्बु प्रजायते ॥१७०॥

भा० टी०—जहाँ २ पर जलाशय बनवाने का विचार हो उस २ जगह पर ईशानादि चारो कोणों में दीप रात्रि में वारे, सबेरे देखे जिस दीप के नीचे कर्दम ( कनई ) लग गया होय उस जगह जल है ऐसा जाने ॥ १७० ॥

तडागचक्रम् ।

तडागस्य तु चक्रं च प्रवक्ष्यामि यथादितम् ।

रविभाद्रिनभं गण्यं न्यासं कृत्वा वदेत्फलम् ॥१७१॥

प्राच्यादिषु द्वयं न्यस्य पञ्च मध्येनियोजयेत् ।

षड्दद्याद् वारिवाहे तु प्रविचार्य फलं वदेत् ॥१७२॥

बहुशोकं भवेत्प्राच्यामाग्नेय्यां सुजलं बहु ।

जलनाशं दक्षिणस्यां राक्षस्यां चामृतं जलम् ॥१७३॥

स्वादूदकं च वारुण्यां वायव्यां निर्मलं भवेत् ।

स्थिरं तोयं चोत्तरे स्याच्छैवे च कुत्सितं जलम् ॥१७४॥

पूर्णं जलं भवेन्मध्ये वारिवाहे तु पूर्णता ।

शुभं जलं विचार्यैवं तडागारम्भमाचरेत् ॥१७५॥

भा० टी०—तडाग ( तालाव ) चक्र को कहते हैं कि सूर्य के नक्षत्र से तडागारम्भ के नक्षत्र तक गिने उस का न्यास करके फलको कहै, पूर्वादि ८ दिशाओं में दो नक्षत्र धरे, ५ नक्षत्रमध्य में ६ नक्षत्र वारिवाह ( नल ) में धर के विचार कर फल कहै, पूर्व में बहुत शोक, अग्नि कोण में सुजल, दक्षिण में जलनाश, नैऋत्य में अमृत जल, पश्चिम में स्वादिष्ट कल, वायव्य में निर्मल कल, उत्तर में स्थिर जल, ईशान में कुत्सित ( निर्दित ) मध्य में तथा वारिवाह में पूर्ण जल होता है शुभ जल को इस प्रकार विचार करके तालाव बनावै ॥ १७१-१७५ ॥

तडागमुद्घूर्तः—

ध्रुवे श्रोत्रेन्दुपौष्णे च पुष्ये आप्येऽम्बुपे तथा ।

कवीन्दुवारे लग्नेशे तडागारम्भणं शुभम् ॥१७६॥

भा० टी०—ध्रुव ( १३ उत्तरा रोहिणी ) पुष्य मृगशिरा रेवती पूर्वाषाढ और शतभिषा नक्षत्रमें चन्द्र शुक्रवार और शुभ लग्न में तडाग ( तालाव ) का आरंभ करना शुभ है ॥



वापीमुहूर्तः—

स्वात्याश्विहस्तपुष्येषु मैत्रे चैव पुनर्वसौ ।

रेवत्यां वारुणे चैव वापीकार्यं प्रशस्यते ॥१७५॥

भा० टी०—स्वाती अश्विनी हस्त पुष्य अनुराधा पुनर्वसु रेवती और शतभिषा नक्षत्र में वापी ( वावली ) बनाना शुभ है ॥ १७५ ॥

नेवारचक्रम् ।

नेवारे पूर्वतस्त्रीणि त्रीणि त्रीणि च सर्वतः ।

मध्ये चत्वारि देयानि राहुभाच्चन्द्रभं बुधैः ॥१७८॥

भा० टी०—नेवार ( नीचक, जमुअट ) देने के लिये राहु के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्रतक गिने पूर्वादिदिशा में तीन २ नक्षत्र सप्तजगह देय । मध्य में धनक्षत्र देय ॥१७८॥

फलम्—

मध्ये पूर्वं जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्धनम् ।

याम्यनैऋतयोर्दुःखं भयं बहुपरेऽन्यदिक् ॥१७९॥

भा० टी०—यदि राहु के नक्षत्र से चन्द्रमा का नक्षत्र मध्य में तथा पूर्व में पड़े तो जल सुख होता है, उत्तर में धन बढ़ता है, दक्षिण नैऋत्य कोण में दुःख होता है शेष दिशा में भय होता है ॥ १७९ ॥

नेवारस्थापनमुहूर्तः—

ध्रुवर्चे क्षिप्रमेचैव शुभयोगे शुभेक्षणे ।

शुभवारे शुभतिथौ नेवारस्थापनं शुभम् ॥१८०॥

भा० टी०—ध्रुवसंज्ञक ( तीनों उत्तरा रोहिणी ) क्षिप्रसंज्ञक ( हस्त अश्विनी पुष्य अभिजित् ) नक्षत्र में शुभ वार शुभ तिथि में नेवार ( नीचक ) स्थापित करना शुभ है ॥ १८० ॥

कूपवाप्यादीनां जीर्णोद्धारकरणे भादीनि—

ध्रुवे पित्र्ये धनिष्ठायां रेवत्यां चाम्बुभेषु च ।

पुष्ये मित्रे तथा चान्द्रे चन्द्रे च जलराशिगे ॥१८१॥

तन्त्रवांशगते चन्द्रे शुभदृग्योगसंयुते ।

जीर्णोद्धारं प्रकर्तव्यं शुभे वारे च सत्तिथौ ॥१८२॥

भा० टी०—ध्रुव संज्ञक ( उत्तरा ३ रोहिणी ) मघा धनिष्ठा रेवती पूर्वाषाढ पुष्य अनुराधा और मृगशिरा नक्षत्र में जलचर राशि के चन्द्रमा में या जलचर राशि के नवांश में चन्द्रमा के प्राप्त होने पर शभवार शुभतिथि में जीर्णोद्धार करे ॥१८१॥१८२॥



जलाशयानां संस्कारकृत्वाजलपानं कर्तव्यमसंस्कृतजलपानेतु महान्दोषः—

संस्कारं प्रथमं कृत्वा जलं पेयं मनीषिभिः ।

असंस्कृतं जलं पीत्वा पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८३॥

तोयं सदा पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् ।

कणमात्रमपि त्याज्यं संस्काररहितं बुधैः ॥१८४॥

तडागवापीकूपादौ संस्काररहितं जलम् ।

तदपेयं भवेत्सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १८५ ॥

भा० टी०—विद्वान् गण पहले जलाशय का संस्कार करके जल पीवे। कहा है कि बिना संस्कार काले जलाशय का जल पीकर पीछे चान्द्रायण व्रत को करे। जल सदा पवित्र है परन्तु संस्कार रहित जल अपवित्र है, संस्कार से रहित जल कणमात्र भी त्यागने योग्य है तडाग वापी कूप आदि का संस्कार ( जो उसके हवन आदि का विधान जलाशय प्रतिष्ठा जलाशयोत्सर्ग आदि ग्रन्थ में लिखा है ) रहित जल पीकर चान्द्रायण व्रत करने पर पवित्र होगा ॥१८३॥१८४॥१८५॥

जलाशयकरणे माहात्म्यं मुनिभिः कथितम्—

उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति चेह परत्र च ।

तस्माज्जलाशयाःकार्याः जनैस्तु फलकाङ्क्षिभिः ॥१८६॥

कूपारामप्रपाकारी तथा कन्याप्रदश्च यः ।

सेतुकारी नरः स्वर्गं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥१८७॥

यावज्जलाशये तोयं सततं खलु तिष्ठति ।

स्वर्गलोकेऽक्षयं तावद् वासो भवति निश्चितम् ॥१८८॥

वापी कूप तडागं वा निर्जलेयः करोति वै ।

तस्य पुण्यस्य सङ्ख्यां च को वा वर्णयितुं क्षमः ॥१८९॥

जलाशयेषु जीर्णेषु देवतायतने च ।

पुनः संस्कार कर्ता च लभते चाधिकं फलम् ॥१९०॥

भा० टी०—जल के बिना इस लोक में तथा परलोक में तृप्ति नहीं होती है, उससे फल के इच्छा करने वाले मनुष्य जलाशय को बनवाये। कूप आदि जलाश वाग बनाने वाला पौसरा देने वा दिला देने वा कन्यादान करने वाला तथा सेतु ( पुल ) बाँधने वाला मनुष्य स्वर्ग को जाता है इसमें संशय नहीं है, जब तक जलाशय में जल रहता है तब



तक उसका स्वर्ग लोकसे क्षय नहीं होता है । किन्तु निरंतर स्वर्गलोकमें वास होता है, जल रहित भूमि में वापी कूप तड़ाग जो बनवाता है तिसके पुण्य की संख्या को कौन गिन सकता है जीर्ण जलाशय तथा देवालय का जो पुनरुद्धार करता है उसको अधिक फल प्राप्त होता है ॥ १८६-१९० ॥

इति श्रीज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणि श्रीछत्रधरसूरिसुनुदैवज्ञभूषण मातृप्रसाद पाण्डेय कृतायां सोदाहरणान्वितायां वास्तुसारण्यां द्वाकर्मलप्रकरणम् ॥ ३ ॥

## अथ बृहत्संहितोक्तवृक्षायुर्वेदाध्यायः ।

तत्रादौ तत्प्रयोजनमाह—

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः ।

यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥१॥

भा० टी०—जलाशय ( कूप वापी तड़ाग ) समीपवर्ती छाया के बिना चित्त प्रसन्न कारक तथा सुशोभित नहीं होता है । उसी कारण जल के समीप में वाटिका लगाना चाहिये ॥ १ ॥

अथ तत्र भूलक्षणमाह—

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।

पुष्पितांस्तौश्च मृद्वनीयात् कर्मेतत्प्रथमं भुवः ॥२॥

भा० टी०—कोमल भूमि सभी वृक्षों के लिये हितकर होती है इससे वृक्ष लगाने के लिए भूमि में पहले तिल बोवें, तिल जब पुष्प से युक्त हो तो उसको वहां ही मर्दन कर देवें इतना कर्म वाटिका लगाने के पूर्व में करें ॥ २ ॥

अधुना प्रथमारोप्यान् वृक्षानाह—

अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः ।

सांगल्या पूर्वमारामे रोपणीया एहेषु वा ॥ ३ ॥

भा० टी०—वाटिका अथवा गृह में अरिष्ट अशोक पुन्नाग शिरीष तथा प्रियङ्गु पहले रोपने से शुभकारक होता है ॥ ३ ॥

अधुना कारुडरोप्याणां विधानमाह—

पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः ।

द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः ॥ ४ ॥



एते द्रुमा काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः ।

मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥

भा० टी०—कटहर अशोक केला लकृच अनार दाचां ( मुनक्का ) पालीवत ( चोंक ) बीजपूर अतिमुक्त इन वृक्षों की शाखा को गोमय से लीप करके रोपण करना चाहिये अन्य वृक्ष का मूल काट कर अन्य विजातीय वृक्ष के साथ लगाना तथा अन्य वृक्षों की शाखा को काट कर विजातीय वृक्ष के मूल में बाँधना इसको सब कलमी वृक्ष के नाम से पुकारते हैं । गोमय के साथ मिट्टी अवश्य मिलाय देवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वृक्षाणां कालनियमार्थमाह—

अजातशाखाँञ्छिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।

वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथादिक्प्रतिरोपयेत् ॥ ६ ॥

भा० टी०—जिस वृक्ष में लता अंकुर न होय उसको शिशिर ऋतु ( माघ फागुन ) में लगाना चाहिये । जिस में शाखा होय उनको हेमन्त ( मार्गशीर्ष पौष ) में लगावे महाशाखावाले वृक्षों को वर्षा ऋतु ( आषाढ भाद्रपद ) में लगावे इन वृक्षों को प्रथम वृक्ष लगाने से पूर्व २ दिशा में दूसरे वृक्ष को लगावे ॥ ६ ॥

अन्यदप्याह—

घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः ।

आमूलस्कन्धलिसानां सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—घी खश तिल मधु विडंग गौ का दुग्ध गोमय इन सब वस्तुओं को वृक्षों में मूल से प्रति शाखा पर्यन्त लेपन करके संक्रामण विरोपण ( एक जगह से दूसरी जगह लगाना ) चाहिये ॥ ७ ॥

अथ रोपणप्रकारमाह—

शुचिर्भत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः ।

रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तेरेव जायते ॥ ८ ॥

भा० टी०—पवित्र होकर स्नान चन्दन से वृक्ष की पूजा करके वृक्ष को लगाना चाहिये । उस में जो पत्र वगैरह रहते हैं उस के साथ ही उसको वृद्धि होती है ॥ ८ ॥

अथ रोपितानां सेचनविधानमाह—

सायं प्रातश्च घर्मर्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।

वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥ ९ ॥

भा० टी०—लगाये हुए वृक्षों को इस प्रकार पानी देय कि सायंकाल और पूर्वाह्न में भीष्म ऋतु में, दुपहर के समय जाड़े में और वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर किसी भी समय वृक्षों में जल देवे ॥ ९ ॥



अथानूपजान् वक्षानाह—

जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः ।

वीजपूरकमृद्धीका लकुचाश्च सदाडिमाः ॥१०॥

वज्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।

तिमिगेऽम्रातकश्चेति षोडशानूपजाः स्मृताः ॥११॥

भा० टी०—जामुन बेंत वानीर कदम्ब गूलर अर्जुन वीजपूरक मृद्धीक (द्राक्षा) लकुच अनार वंजुल नक्तमाल तिलक कटहर तिमिर अम्रातक यह १६ वृक्ष बहुत जल से होते हैं इन को विशेष जल देना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ रोपितानां वृक्षाणां किं प्रमाणान्तरं कार्यमित्याह—

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् ।

स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥१२॥

भा० टी०—एक वृक्ष से दूसरा वृक्ष २० हाथ दूर पर लगाना उत्तम है, १६ हाथ पर मध्यम है, १२ हाथ के दूर पर लगाना निम्न है ॥ १२ ॥

अथ तदर्थमाह—

अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।

मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥१३॥

भा० टी०—जो वृक्ष समीप होते हैं उनकी शाखायें परस्पर स्पर्श कर भिड़ जाने के कारण तथा मूल के भी मिलने के कारण पीडित रहते हैं यानी फल को नहीं देते ॥ १३ ॥

अथ तेषां रोगज्ञानमाह—

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता ।

अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रससृतिः ॥१४॥

भा० टी०—शीतवात (वायु) आतप (धूप) से वृक्षों को रोग उत्पन्न होता है। इसका पहिचान यह है कि पत्रों पर पाण्डुता (पीलापन) आ जाना प्रवाल तथा अंकुर का ह्रास और रसका स्राव होना इन चिह्नों से वृक्षों को रोगी जानै ॥ १४ ॥

अथै तेषां चिकित्सितमाह—

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।

विडङ्गवृत्तपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥१५॥

भा० टी०—वृक्ष के जिन २ अंगों में अण (छिद्र वा चिह्न) हो गया हो, पहले



उसको शस्त्र ( कुल्हाड़ी आदि हथियार ) से काटै बाद विडंग घी पंक ( कीचड़ ) को मिलाकर अच्छे प्रकार से लेप करै और दूध में जल मिलाकर उसको सींचै ऐसा करने से रोग दूर होता है ॥ १५ ॥

अथ फलनाशचिकित्सितमाह—

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।

शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये ॥ १६ ॥

भा० टी०—जब वृक्षों का फल नाश होय तो कुलत्थ ( कुलथी ) उर्द मुद्ग ( मूंग ) तिल और यव सबको मिलाकर जल के साथ क्वाथ ( काढ़ा ) बनाकर काढा को ठंडा होने पर उसमें दूध मिलाकर सेचने से फल फूल की वृद्धि होती है ॥ १६ ॥

अथ वृद्धयर्थप्रयोगमाह—

अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम् ।

सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह ॥१७॥

सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः ।

वल्लीगुल्मलतानां च फूलपुष्पाय सर्वदा ॥१८॥

भा० टी०—मेड़ बकरी का माल एक २ आढक, तिल १ आढक, सक्तु १ प्रस्थ जल एक द्रोण, गोमांस १ तुला ये सब मिल कर सात रात्रि पर्यन्त एकत्र रखे बाद सैक करे तो वल्ली लता और फल की विशेष वृद्धि होती है । यह प्रमाण एक वृत्त के वास्ते है, अतः इतना २ प्रत्येक वृक्षों के लिये सामान होना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ बीजानां वापनविधानमाह—

वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम् ।

गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रोडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥१९॥

मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ ।

क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥२०॥

भा० टी०—जब जिस किसी वृक्ष का बीज लगाना होय तब हाथ में घी लगाकर उस हाथ से बीज को दुग्ध में भिगोय देवै । ऐसेही १० दिन बराबर करै । इसके बाद उसको गोमय के साथ मर्दन करै फिर सूकर और मृग के मांस का धूप देय, फिर उसमें सूकर और मृग के मांस को मिलाय लेय फिर भूमि पर रोपण करे बाद दूध और जल से अच्छे प्रकार से सींचे ऐसा करने से फूल लग जाता है । यह ध्यान रहे कि श्लो० २ के अनुसार बीज बोनेवाली भूमि होनी चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥



अथ तिन्तिडीविधानमाह—

तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं ब्रीहिमाणितिलचूर्णसक्तुभिः ।  
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥२१॥

भा० टी०—इमिली के बीज को धान उर्द तिज उनका चूर्ण पिलाओ सत्तू और दुर्गन्ध मांस में भिगोय कर हल्दी का धूप देवे तो वल्लरी ( शाखा ) आदि करती है । इसमें आदि शब्द है उससे अन्य वृक्ष भी वल्लरीकारक हो सकते हैं ॥ ५१ ॥

अथ कपित्थबीजारोपणमाह—

कपित्थवल्लीकरणाय मूला—  
न्यास्फोटधात्रीधववासिकानाम् ॥  
पलाशिनीवेतससूर्यवल्ली  
श्यामातिमुक्तैःसहिताष्टमूली ॥२२॥  
क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते  
तालाशतंस्थाप्य कपित्थबीजम् ॥  
दिने दिने शोषितमर्कपादै—  
मांसं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥२३॥  
हस्तायतं तद् द्विगुणं गभीरं  
खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ॥  
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत्—  
प्रलेपयेद्भस्म समन्वितेन ॥२४॥  
चूर्णीकृतैर्माणितिलैर्यवैश्च  
प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ॥  
मत्स्यामिषाम्भस्सहितं च हन्या—  
द्यावाद् घनत्वं समुपागतं तत् ॥२५॥  
उसऊच बीजं चतुरङ्गुलाधो—  
मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् ॥



## वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला

विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥२६॥

भा० टी०-कपित्थ ( कैथ ) बीज में वल्ली पैदा करने के निमित्त ये उपाय हैं कि आस्फोतक ( सारिवा ) धात्री ( अंबरा ) धव वासिका इन चारों वृक्षों का मूल, और वैत वृक्ष का मूल पत्र सूर्यवल्ली श्यामा अतिमुक्त वृक्ष का मूल, इन सबों को मिलाने से अष्ट मूली होती है, अष्टमूली को दूध के साथ काढ़ा बनावे, फिर उस को ठंडा कर के उस में कैथका बीज छोड़े उसको क्वाथ में सौ बार ताली बजाने में जितना समय बीते उतने समय तक रखे, बाद उसके निकाल कर घाम में सुखावे इसी प्रकार १ मास तक करता जाय फिर रोपे।

रोपने के लिये १ हाथ लंबा चौड़ा, दो हाथ गहिरा खात ( गड़हा ) खने उस में जल भर दे। जब सूख जाय तब अग्नि से उसको जजाय देय फिर उस गर्त में मधु घी से मिला हुआ भस्म से लेप करे, फिर उस में चार अंगुल मिट्टी देय फिर उसमें उरद तिल जब का चूर्ण छोड़ फिर ४ अंगुल मिट्टी देय उस पर उर्द तिल जब का चूर्ण छोड़ ऐसा बार २ करता जाय जब गर्त पूरा हो जाय तब उस में मछली के मांस से युक्त जल देके उसको पीटै जब वह कड़ा होय जाय तो उसके ४ अंगुल नीचे बीज बोवे फिर मछली के मांस सहित जल से सोंचे तो शीघ्र ही उत्तम वल्ली तथा अंकुर पैदा होती है ॥ २२-२६ ॥

अथान्येषां रोपणमाह-

शतशोऽङ्गोलसम्भूतफलकत्वेन भावितम् ॥

एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥२७॥

वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम् ।

फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥२८॥

भा० टी०-यदि किसी वृक्ष का बीज लगाना होय तो उस बीज को अंकोल ( पिस्ता ) वृक्ष के फल कल्क से सौ बार भावना देकर वा उसके तेल से १०० बार भावना देकर अथवा श्लेष्मातक ( लिसोरा ) के रस से वा तेल से १०० बार भावना देय फिर उस बीजको पत्थर के पानी से मिश्रित कोमल भूमि में लगाने से उसी काल में उस बीज से अंकुर निकल आते और फल के भार से शाखा युक्त होती है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २७-२८ ॥

अथ श्लेष्मातकरोपणमाह-

श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः ।

अङ्गोलविज्जालाद्दिश्यायां सप्तकृत्वैवम् ॥२९॥



माहिषगोमयघृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य ।

करकाजलमृद्योगे न्युसान्यह्ना फलकराणि ॥३०॥

भा० टी०-बुद्धिमान् मनुष्य लिसोरा के बीज का कृत्रिम तुप उतार कर अंकोल युक्तजल से भिगोवे छाया में सुखावे ऐसा सात दिन करके फिर उस बीज को माहिष के गोबर से घिसै । फिर विशेष गोमय ( गोबर ) गाड़ देय जत्र पोला ( वनैली ) गिरे तो तो उसके जलमें गोबर से युक्त बीज के लगाने से एक दिन में वह फलने लगता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वृक्षाणां रोपणनक्षत्रमाह-

ध्रुवमृदुमूलविशाखागुरुभं श्रवणस्तथाश्विनीहस्तः ।

उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

भा० टी०-ध्रुव ( तीन उत्तरा, रोहिणी ) मृदु ( मृगशिरा चित्रा रेवती अनुराधा ) मूल विशाखा पुष्य श्रवण अश्विनी हस्त ये १४ नक्षत्र दृष्टिवाले ऋषियों ने पादप रोपण के लिये कहा है ॥ ३१ ॥

इति श्रीज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणि श्रीछत्रधरसूरिसूनुदैवज्ञभूषणमातृप्रसादपाण्डेय कृतायां सोदाहरणान्वितभाषाटीकावास्तुसारण्यांवृक्षायुर्वेदाख्यप्रकरणम् ॥३॥

## अथ प्रासादलक्षणम्

तत्रादौ तत्प्रयोजनमाह-

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च ।

देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता ।

देवानामालयः कार्यो द्रयमप्यत्र दृश्यते ॥२॥

भा० टी०-विशेष जलाशय ( कूप पुष्कर तड़ाग आदि ) बनवा कर बाग लगा कर उस स्थान पर यश तथा धर्म वृद्धि के लिये देवता का गृह ( देवालय ) बनवावै, इष्टापूर्त ( यज्ञ ) तथा जलाशयादि से जो लोक ( स्वर्ग आदि ) मिलते हैं । उन लोकों की प्राप्ति के निमित्त देवालय ( मंदिर ) बनवाना चाहिये । वहां पर दोनों फल देखे जाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

कीदृशेषु स्थानेषु सुरा रज्यन्त इत्याह-

सलिलोद्यानयुक्तेषु कुतेष्वकृतकेषु च

स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥



भा० टी०—जलाशय तथा बगीचा बनवाया हो वा स्वाभाविक हो ऐसे स्थानों में देवता वास करने को जाते हैं ॥ ३ ॥

अन्यच्च कीदृशेष्वित्याह—

सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु ॥

हंसां साक्षिसकह्वारवीथीविमलवारिषु ॥ ४ ॥

हंसकारण्डवक्रौञ्च चक्रवाकविराविषु ।

पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥

भा० टी०—जिस सरोवर में सूर्य के किरण के रोकने के लिये कमल छाता का काम दे रहा है और हंस अपने कन्धे से कमल पुष्प को फेंक दिया है। इस से जो जल में वीथी बनी है हंस कारण्डव क्रौञ्च चक्रवाइन पक्षियों का जहाँ शब्द होता है तथा जल में निचुल नामक वृक्ष की छाया होय जहाँ जलचारी विश्राम करत हों वहाँ देवता वास करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अन्यत्कीदृशेष्वित्याह—

क्रौञ्चक्रौञ्चोक्लापाश्च कलहंसकलस्वराः ।

नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखला ॥ ६ ॥

फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः ।

पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसवासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥

भा० टी०—क्रौञ्च पक्षी के क्रौञ्चीकलाप ( बोलने के समय जीभ का विस्तार ) तथा राजहंस का मधुर स्वर जिस जलाशय में होय जिस नदी में जल वस्त्र है। मछली मेखला ( फिनारी ) हैं ऐसी नदी में देवता रमण करते हैं, प्रफुल्लित जो तीरस्थ वृक्ष ये ही हैं कर्ण भूषण जिन के, ऐसे दो नदी का संगम वही है श्रोणिमण्डल जिसका ऐसे तीर में जो उन्नत भाग, वही है स्तन जिस का और हंस पक्षी जिस के वस्त्र हैं ऐसी नदी जहाँ हो वहाँ देवता वास करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अन्यत्कीदृशेषु स्थानेषु रमन्त इत्यह—

वनोपान्तनदीशैलनिर्भरोपान्तभूमिषु ।

रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८ ॥

भा० टी०—वन के समीप नदी और पहाड़ के झरने के पास की भूमि में देवता नित्य रमण करते हैं तथा नगर उद्यान ( बाग ) में भी नित्य देवता रमण करते हैं ॥ ८ ॥

अधुना प्रतिष्ठाकरणे भूमिगुणानाह—

भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि ।

ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥



भा० टी०—आह्वयादि चार वर्णों के लिये वास्तुकर्म में जिस प्रकार की भूमि कही है, उस प्रकार की भूमि देवता के प्रासाद में भी शुभ होती है ॥ ६ ॥

अधुना देवतागृहे वास्तुपुरुषलक्षणं द्वारविभागं चाह—

चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा ।

द्वारं च मध्यमं तत्र समदिकस्थं प्रशस्यते ॥१०॥

भा० टी०—देवता का गृह ६४ पद का बनाना चाहिये । उस देवालय का मध्यम सम \* दिशा में द्वार प्रशस्त होता है ॥ १० ॥

३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०
शिव निनि	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	शुभ	अन्तिम अन्तिम
अदिति	पर्जन्य अदिति	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	शुभ पूषा	पूषा
भुजग	भुजग	आपस्तम्ब आपः	अर्यमा	अर्यमा	सविता सविता	वितथ	वितथ
सोम	सोम	पृथिवीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	वृहत्त	वृहत्त
भल्लाट	भल्लाट	पृथिवीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यम	यम
मुख्य	मुख्य	इन्द्र गन्धर्व	मित्र	मित्र	इन्द्र जयन्त	गन्धर्व	गन्धर्व
नाग	नाग शोष	असुर	वरुण	कुसुमदन्त	सुग्रीव	शुभराज दौवारिक	भृङ्गराज
शोष प्राप्य	शोष	असुर	वरुण	कुसुमदन्त	सुग्रीव	दौवारिक	भृङ्गराज
३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०

\* अष्टाष्टपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक् ।

ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्पूर्वपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥१॥

अष्टौ च वहिःकोणेष्वर्धपदाः तदुभयस्थिताः सार्धाः ॥

उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते च ॥ २ ॥

यह वाराहीसंहिता के ५३, वें अध्याय का ५५-५६ वां श्लोक है, इस के पहले ८१ कोष्ट के वास्तु



अथ प्रासादानां विधानमाह—

यो विस्तारो भवेद् यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः ।

उच्छ्रायाद् यस्तृतीयांशस्तेन तुल्या कटिः स्मृता ॥ ११ ॥

विस्तारार्धं भवेद् गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः ।

गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥

उच्छ्रायात् पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः ।

विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥

त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत् प्रशस्यते ।

अधः शाखा चतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥

शेषं माङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षैः स्वस्तिकैर्घटैः ।

मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशो भयेत् ॥ १५ ॥

द्वारमानाष्टभागोना प्रतिमा स्यात् सपिण्डिका ।

द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥ १६ ॥

भा० टी०—प्रासाद ( देवमन्दिर ) का जो विस्तार है, उस से दूनी उस की उँचाई होती है, उँचाई का तीसरा भाग उस देवगृह की कटि होगी । देवगृह के विस्तार का आधा उसका गर्भ होता है, गर्भ के चारो दिशा में भित्ति होती है, गर्भ का जो विस्तार मान है, उसके चतुर्थांश के तुल्य द्वार का विस्तार करे और विस्तार से दूनी उस द्वार की उँचाई करे । द्वार की उँचाई का जो चतुर्थांश हो उसके विस्तार तुल्य शाखा बनावे उसी प्रकार उदुम्बर भी रखे ( शाखा के ऊपर नीचे काष्ठ को उदुम्बर कहते हैं ) शाखा का जो विस्तार है, उसके चतुर्थांश के तुल्य शाखाओं की मोटाई करे । यह द्वार ३, ५, ७, ९

होता है इसी से अथवा पद दिया है, अथवा ६४ कोष्ठ करना । पूर्व पश्चिमनौ रेखा और उत्तर दक्षिण नौ रेखा खींचे । चार कोण में तिर्यक् रेखा निकाले । इस में ४ पद के ब्रह्मा, ब्रह्मकोणस्थ आठ देवता ( आप १, आपवत्स २, सविता ३, सवित्र ४ इन्द्र ५, जयन्त ६, राजयक्ष्मा ७, रुद्र ८ ) अर्ध पद है, इस के बाद कोण में आठ देव ( शिखी, १ अन्तरिक्ष २, अनिल ३, मृग ४, पितृ, पापयक्ष्मा ६, रोग ७, अदिति ८ ) अर्धपद हैं, इस के बाजू के आठ देव ( पर्जन्य १, भृश २ पूषा ३ भृङ्गराज ४ दीवारिक ५, शेर ६, नाग ७, अदिति ८, ) सार्ध है अर्थात् डेढ़ पद के हैं । इस में उक्त जो शेष देवता ( जयन्त १, इन्द्र, २, सूर्य ३, सत्य ४, वितथ ५, बृहक्षत ६, यम ७, गन्धर्व ८, सुग्रीव ९, कुसुमदन्त १०, वरुण ११, असुर १२, मुख्य १३, भल्लाट १४, सोम १५ भुजग १६ अर्यम १७, विवस्वान् १८, मित्र १९, पृथिवीधर २० ) हैं, वे द्विपद हैं ।



शाखाओं से प्रशस्त होता है, दोनों शाखा के नीचे का जो भाग है, उस के चतुर्थांश से प्रतीहार ( नान्दी दंडादि को को रखना ) शेष तीन भाग में हंस आदि मंगलपक्षी, और श्रीवृत्त मांगलिक घट ( कलश ) मिथुन ( जोड़ा ) लता पत्रादिकोंसे तथा गणों से शोभा का प्रादुर्भाव करै, द्वार की उँचाई का जोड़ा अष्टमांश वह द्वार की उँचाई में घटा कर सपिण्ड की प्रतिमा करै, उस में दो भाग प्रतिमा और तीसरा भाग पिंड का प्रमाण करै ॥ ११-१६ ॥

उदाहरण—मेरुप्रासाद का विस्तार ३२ हाथ है, इसका दूना ६४ हाथ इस प्रासाद की उँचाई हुई, इस उँचाई का तृतीयांश २१ हाथ, ८ अंगुल कटि हुआ और विस्तार ३२ हाथ का आधा १६ हाथ गर्भ हुआ, गर्भ का चतुर्थांश ४ हाथ द्वार का विस्तार हुआ इसका दूना ८ हाथ द्वार की उँचाई हुई, उँचाई का चतुर्थांश २ हाथ द्वारशाखा का विस्तार हुआ, और २ हाथ का उदुम्बर हुआ, द्वारशाखा का विस्तार २ हाथ है तो इसका चतुर्थांश १२ अंगुल द्वारशाखा की मोटाई हुई, द्वार की उँचाई ८ हाथ है इसका अष्टमांश १ हाथ इसमें घटाने से ७ हाथ पिंडी के सहित प्रतिमा हुई, इसमें का दो भाग ४ हाथ १६ अंगुल प्रतिमा, और तृतीयांश २ हाथ ८ अंगुल पिंडी हुई इसी प्रकार अन्य प्रासाद की भी उँचाई आदि जाने ।

अथ प्रासादानां नामान्याह—

मेरुमन्दरकैलाशविमानच्छन्दनन्दनाः ।

समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः ॥१७॥

गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः ।

सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥१८॥

इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः संज्ञया मया ।

यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥१९॥

भा० टी०—प्रासाद ( देवमन्दिर ) २० प्रकार के होते हैं, १ मेरु, २ मन्दर, ३ कैलाश, ४ विमानछन्द, ५ नन्दन, ६ समुद्र, ७ पद्म, ८ गरुड, ९ नन्दिवर्धन, १० कुञ्जर, ११ गुहराज, १२ वृष, १३ हंस, १४ सर्वतोभद्र, १५ घट, १६ सिंह, १७ वृत्त, १८ चतुष्कोण, १९ षोडशाश्रय, और २० अष्टाश्रय, इस प्रकार मैंने २० प्रकार का देव मंदिर कहा, इसके बाद यथा क्रम से मैं इन प्रासादों का लक्षण कहता हूँ ॥१७॥१८॥१९॥

तत्रादौ मेरुप्रासादस्य लक्षणमाह—

तत्र षडश्रिमेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरञ्च ।

द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशस्तविस्तोर्यः ॥२०॥

भा० टी०—उन प्रासादों में 'मेरु' नामक जो प्रासाद है, उसमें छः कोण द्वादश



भूमि का ( १२ महल ) ऊपर २ होता है । जिसमें विचित्र २ कुहर ( गवाक्ष ) होते हैं, और चारों दिशाओं में ४ द्वार होते हैं, उनका विस्तार ३२ हाथ और उँचाई ६४ हाथ होती है ॥ २० ॥

अथ मन्दरकैलाशयोर्लक्षणमाह—

**त्रिंशद्वास्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः ।**

**कैलाशोऽपिशिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥२१॥**

भा० टी०—मन्दर प्रासाद ६ कोण, ३० हाथ विस्तार, ६० हाथ ऊँचा दश भूमि ( १० महल ) का होता है । कैलाश प्रासाद भी ६ कोण शिखर युक्त २८ हाथ विस्तार ५६ हाथ ऊँचा और ८ महल का होता है ॥ २१ ॥

अथ विमाननन्दनयोर्लक्षणमाह—

**जालगवाक्षकयुक्ते विमानसञ्ज्ञस्त्रिसप्तकायामः ।**

**नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥२२॥**

भा० टी०—विमान नाम का देवमन्दिर जालीदार गवाक्ष ( खिड़की ) से युक्त २१ हाथ विस्तार, ४२ हाथ ऊँचा छः कोण आठ महल का होता है । नन्दन प्रासाद छः कोण ३२ हाथ विस्तार ६४ हाथ ऊँचा, ६ महल और १६ अंड शिखर से युक्त होता है । प्रासाद के ऊपर अंड होता है ॥ २२ ॥

अथ समुद्रपद्मयोर्लक्षणमाह—

**वृत्तः समुद्रनामा पद्मः पद्माकृतिः शयानष्टौ ।**

**शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥२३॥**

भा० टी०—समुद्र नाम प्रासाद वृत्त ( गोल ) और पद्म प्रासाद कमल के आकार ( अष्टदल ) का होता है । ये दोनों प्रासाद ८ हाथ विस्तार और हाथ ऊँचा होता है एक शृंग एक अंड एक महल का होता है ॥ २३ ॥

अथ गरुडनन्दिवर्धनयोर्लक्षणमाह—

**गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः ।**

**कार्यस्तु सप्तभौमो विभूषितोऽण्डैस्तु विंशत्या ॥२४॥**

भा० टी०—गरुड प्रासाद गरुड पक्षी के आकार का पञ्चयुक्त होता है और नन्दिवर्धन प्रासाद भी पद्म से रहित गरुड प्रासाद के ही सदृश होता है । इन दोनों प्रासादों को २४ हाथ विस्तार ४८ हाथ उँचाई, सात महल, २० अण्ड से युक्त करें ॥ २४ ॥



अथ कुञ्जरगुहराजयोर्लक्षणमाह—

कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात् ।

गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥२५॥

भा० टी०—कुञ्जर प्रासाद गजपृष्ठाकार १६ हाथ विस्तार, ३२ हाथ ऊँचा एक महल का होता है, इसके सदृश गुहराज प्रासाद भी १६ हाथ विस्तार ३२ हाथ ऊँचाई एक महल की हो तो चाहिये कि दोनों प्रासादों में वलभी तीन शिरोग्रह से युक्त होय ॥२५॥

अथ वृषहंसयटानां लक्षणमाह—

वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः ।

हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥२६॥

भा० टी०—वृष प्रासाद १२ हाथ विस्तार, २४ हाथ ऊँचाई, वृत्ताकर (गोल) एक भूमि १ शिखर से युक्त बनावे । हंस प्रासाद हंसपक्षी के तुल्य पुच्छ पक्ष चञ्चु से युक्त वृष प्रासाद के ही विस्तार आदि सब प्रमाणों का बनावे, घटप्रासाद कलश के समान ८ हाथ विस्तार, १६ हाथ ऊँचा, एकशृङ्ग तथा एक भूमि का बनावे ॥ २६ ॥

अथ सर्वतोभद्रस्य लक्षणमाह—

द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्वहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः ।

बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥२७॥

भा० टी०—सर्वतोभद्र संज्ञक प्रासाद चार दिशा में चार द्वार से युक्त बहुत शिखर से युक्त बहुत सुन्दर शिरोग्रह से युक्त २६ हाथ विस्तार; पर ऊँचा पाँचमंजिला और चतुरस्र बनावे ॥ २७ ॥

अथ सिंहवृत्तचतुष्कोणषोडशाश्रयाष्टाश्रयलक्षणान्याह—

सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणोऽष्टहस्तविस्तीर्णः ।

चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥२८॥

भा० टी०—सिंह \* प्रासाद सिंह के सदृश, १२ कोण, ८ हाथ विस्तार, १६ हाथ

छ कश्यपः—सिंहः सिंहसमाक्रान्तः कोणैर्द्वादशभिर्युतः ।

विष्णुभादष्टहस्ता स्यादेका तस्य च भूमिका ॥

वृत्तो वृत्ताकृतिः कार्या सञ्ज्ञातुल्यास्तथापरे ।

सान्धकारस्तु सर्वे ते भूमिकैका समावृताः ॥

एकाण्डरूपिताः सर्वे पञ्चभिश्चतुरस्रकाः ॥ इति ॥



ऊँचा. एक मंजिला बनाना चाहिये, एवं वृत्त प्रासाद, चतुष्कोण प्रासाद, षोडशाश्रय प्रासाद, आश्रय प्रासाद ये चारों नामके तुल्य हैं। यह अन्धकार और एक शिखर युक्त होना चाहिये। जिसमें चतुष्कोण मात्र ५ शिखर से युक्त होय और शेष तीन ( वृत्त षोडश कोण अष्टकोण ) १ शिखर युक्त बनावै ॥ २८ ॥

अथ मयविश्वकर्मणोर्मतेन भूमिकाप्रमाणमपरमतेनैकवाक्यताश्चाह—

भूमिकांगुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् ।

सार्द्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥२९॥

प्राहुः स्थपत्यश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ॥

कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥३०॥

भा० टी०—भूमि का मान मय के \* मत से १०८ अंगुल है, विश्वकर्मा के मत से ३॥ हाथ ( ८४ अंगुल ) भूमि का मान है। इन दोनों मतों में २४ अंगुल का अन्तर पड़ता है। इन दोनों के मतों को पण्डित लोग तथा स्थपति ( बड़ई संतरास इंजनीयर ) लोग एक तो इस प्रकार कहते हैं कि विश्वकर्मा के मत से प्रासाद भूमि का मान लेकर २४ अंगुल में न्यून है। उसको कपोत और पालिका से युक्त करके मय के मत से तुल्यता कर देते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

प्रासादलक्षणमिदं कथितं समासाद्

गर्गेण मद्बुविरचितं तदिहास्ति सर्वम् ।

मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि

तत् संस्मृतिं प्रतिमयात्र कृतोऽधिकारः ॥३१॥

भा० टी०—यह प्रासादलक्षण हमने संक्षेपतः कहा है, परन्तु जो गर्ग मुनि ने प्रासादलक्षण बनाया है, वह सब इसमें आ गया है और मनु वसिष्ठ मय नग्नजित् आदि आचार्यों ने जो बड़े २ प्रासाद लक्षणा रचे हैं, उनकी स्मृति के ग्रंथ के निमित्त हमने अधिकार किया है ॥ ३१ ॥

इति श्रीज्यौतिषीन्द्रमुकुटमणिश्रीछत्रधरसूरिसूनुदैवज्ञभूषणमातृप्रसादपाण्डेय-  
कृतायां सोदाहरणान्वितभाषाटीकावास्तुसारण्यां प्रासादप्रकरणम् ॥५॥

\* प्रासादभूमिकामानं शतमष्टोत्तरं स्मृतम् ।

चतुर्भिर्धिकाशीतिरङ्गुलानां तु भूमिका ॥

कपोतपालिरहितं मानं चतुरशीतिकम् ।

भूमिकानां सह तथा अष्टोत्तरशतं स्मृतम् ॥

अङ्गुलानामतः साम्यं भूमिकासु प्रकीर्तितमिति तन्त्रान्तरे ॥



## प्रतिष्ठामुहूर्ताः ।

रामोक्तजलाशयारामपुरप्रतिष्ठामुहूर्ताः—

जलाशयारामपुरप्रतिष्ठासौम्यायने जीवशशाङ्कगुके ।

दृश्ये मृदुक्षिप्रचरे ध्रुवे स्यात् पक्षे सिते स्वर्चतिथिचरणे वा ॥१॥

रिक्तारवर्जैदिवसेऽतिशस्ताः शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।

व्यन्त्याष्टगैः सखचरैर्भृगेन्द्रे सूर्ये घटे को युवतौ च विष्णुः ॥२॥

शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः चुद्राचरे सर्व इमे स्थिरर्चैः ।

पुष्पे ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥३॥

भा० टी०—उत्तयायण सूर्य में बृहस्पति चन्द्रमा और शुक्र के उदय में, मृदु ( मृ० रे० चि० अनु० ) क्षिप्र ( ह० अश्वि० पुष्य अभि० ) चर ( स्वा० पुन० अ० ध० श० ) ध्रुव ( उ० ३ रो० ) इन नक्षत्रों में शुक्लपक्ष में या अपने नक्षत्र तिथि मुहूर्त में रिक्तातिथि मंगलवार को त्याग कर शेष तिथि वारों में चन्द्रमा और पापग्रह ३११ ६, हों ८१२ में शुभग्रह न होय तो जलाशय ( कूप वापी आदि ) आराम ( वाग ) देवता की प्रतिष्ठा करना शुभ है, प्रतिष्ठा में लग्न सिंह में सूर्य, कुम्भ में ब्रह्मा, कन्या में विष्णु, मिथुन में शंकर, द्विस्वभाव लग्न में देवियों का, चर लग्न में क्षुद्र देवताओं का और स्थिर में सभी का, पुष्य में ग्रहों का, रेवती में गणेश यक्ष सर्प भूतादिकों का और श्रवण में जिनकी स्थापना शुभ होती है । जलप्रतिष्ठा में विशेष है ॥१॥२॥३॥

✽ मातृभैरववाराहनकसिंहत्रिविक्रमाः ।

महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ १ ॥

श्रावणे स्थापयेद्विलङ्गमाश्विने जगदम्बिकाम् ।

मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्पान् पौषे च केवन ॥ २ ॥

✕ हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेभ्यमेतु ।

तिशोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वांमरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥ ३ ॥

— वलक्षपक्षेः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय ।

अन्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षेऽपि शस्तः खलु पक्षयोस्तु ॥ ४ ॥

दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च ।

द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ।

दशम्यादेश्वतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥५॥

तथान्य—मातृगण्डेन्दुदुष्टद्वौ मुरजिदशयने माघपटकस्य शुक्ले

मूलापाढोत्तराश्विश्चवर्णगुरुकरे पौष्णशुक्राजचान्द्रे ।

मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णामदनरवितथौ सद्वितीये तृतीये

कार्या तोयप्रतिष्ठा जगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥ १ ॥



प्रतिष्ठायां मासफलम् ।

पौषे राजविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु सम्पदः ।

फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रमासि शुभावहाः ॥४॥

अतीव सौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहः ।

आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः ॥५॥

सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा ।

भाद्रे सम्मानहानिः स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा ॥६॥

कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथैव च ।

सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनो भवेत् ॥७॥

भा० टी० - पौष में प्रतिष्ठा करने से राज्यवृद्धि, माघ में धन, फाल्गुन में द्रव्य लाभ, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सौख्य, ज्येष्ठ में जय, आषाढ में यजमान का नाश, श्रवण में राज्य तथा देश की हानि, भाद्रपद में सम्मान की हानि, आश्विन में राज्य की हानि, कार्तिक और मार्गशीर्ष में शत्रु की वृद्धि होती है। सब वर्णों के लिए वसन्त ऋतु में स्थापना करना शुभ होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चातिशोभना ।

क्षत्रियाणां पञ्चमी तु सप्तमी शोभनप्रदा ॥८॥

वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणां च त्रयोदशी ।

भा० टी० - ब्राह्मण के २३ तिथि, क्षत्रिय के ५७ तिथि, वैश्य के १० तिथि, शूद्र के १३ तिथि, देवप्रतिष्ठा में शुभ है ॥ ८ ॥

वारफलं मुहूर्तगणपतौ—

प्रतिष्ठोद्या तथा क्षेमा बहिदा वरदा दृढा ।

आनन्ददायिनी कल्पस्थायिन्यर्कादिवासरे ॥९॥

भा० टी० - रविवार को प्रतिष्ठा करने से उग्र, चन्द्रवार के कल्याण, भौमवार को अग्निमय, बुध को वर देनेवाली, गुरु को दृढ़, शुक्र को कल्याणदायिनी और शनि को कल्प पर्यन्त रहनेवाली होती है ॥ ९ ॥

जातिभेदेन वारफलम्, वृहस्पतिः—

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरुशुक्रयोः ।

वारौ दिवाकरेन्द्रोश्च क्षत्रियाणां शुभावहौ ॥१०॥



वैश्यानां बुधवारः स्यात् सुरसंस्थापने शुभः ।

मन्दवारस्तु शूद्राणां प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥११॥

जीवशुक्रबुधानां च सर्वेषां शोभनावहाः ।

पापग्रहाणां वाराश्च बलिनः शुभका स्मृता ॥१२॥

भा० टी०—ब्राह्मण यदि प्रतिष्ठा करनेवाला हो तो उसके गुरु शुक्र वार, क्षत्रिय के रवि सोम, वैश्य के बुध और शूद्र के लिए शनिवार शुभ प्रद है, अथवा गुरुशुक्र बुधवार सप्त जातियों के शुभ हैं पर बलवान् पाप वार भी सभी जाति के लिए शोभन है ॥१०॥११॥१२ जातिभेदेन नक्षत्राण्याह—

× उत्तरात्रिकपुष्याश्च ब्राह्मणानां शुभावहाः ।

श्रवणे हस्तमूले च क्षत्रिये शुभदाः स्मृताः ॥१३॥

वैश्यानां स्वातिमैत्रे च पौष्णे चैव शुभावहाः ।

शूद्राणामश्विनी श्रेष्ठा देवतास्थापने सदा ॥१४॥

भा० टी०—ब्राह्मण के उत्तरा ३ पुष्य, क्षत्रिय के श्रवण, हस्त, मूल, वैश्य के स्वाति अनुराधा रेवती और शूद्र के लिये देवस्थापन में अश्विनी शुभ है ॥१३॥ १४॥ जातिभेदेन राशिश्चाह—

ब्राह्मणक्षत्रियाणाञ्च शोभनाः स्थिरराशयः ।

उभयोराशयोर्वैश्यशूद्राणां शोभनाः स्मृताः ॥१५॥

भा० टी०—ब्राह्मण क्षत्रिय के लिए स्थिर राशि और वैश्य शूद्र के चर द्विस्वभाव राशि प्रतिष्ठा में शुभ है ॥ १५ ॥

लग्नशुद्धिः तत्र नारदः—

चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे \* शोभने दिने ।

× जन्मभाद्रपदं कर्म सङ्कृतार्क्षं च पौडशम् ।

अष्टादशः सामुदायं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥ १ ॥

मानसं पञ्चविंशार्क्षं नाचरेच्छुभभेषु तु ।

पूर्वाह्णे चोत्तमं प्रोक्तं मध्याह्ने मध्यमं बुधैः

सायाह्णे च मया प्रोक्ता स्वगृहे चाशुभे विधौ ॥१॥

कदाचिन्निश्चयि प्रोक्ता प्रतिष्ठा च कृते युगे ।

कलौ युगेऽतिदोषाय प्रतिष्ठा निशि मानवैः ॥२॥

ॐ एकोऽपि जीवे बलवान् तनुस्थः सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा बली चेत् ।

दोषानशेषान् विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकद्वन्द्वैत्यम् ॥ १ ॥

गणाधिकतरे लग्ने दोषान्यत्वतरे यदि । सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम् २



शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ॥ १६ ॥

राशयः सकला श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः ।

राशिस्वभावजं हित्वा फलं\* ग्रहजमाश्रयेत् ॥ १७ ॥

भा० टी०—चन्द्रमा तथा तारावल युक्त हो शुभ दिन के पूर्वार्ध में शुभ ग्रह का लग्न नवांश होय तो प्रतिष्ठा शुभ है, परन्तु कर्ता के राशिलग्न से अष्टम वह लग्न नवांश न हो तथा शुभ ग्रह के योग दृष्टि से सब लग्न श्रेष्ठ होता है, एवं जिस राशि के ऊपर शुभ ग्रह की योग दृष्टि हो तो वह राशि अपने स्वभाव को त्याग कर ग्रह से उत्पन्न फल को देती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

देवस्थापने देवमुखनियमः वास्तुराजवल्लभे ।

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरस्याः शुभाः

प्रोक्तौ सर्वदिशामुखो शिवजिनो विष्णुर्विधाता तथा ।

चामुण्डा ग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो

देवो दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैऋत्यवक्त्रो भवेत् ॥ १८ ॥

भा० टी०—ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र सूर्य षडानन को पूर्व पश्चिम मुख, शिव, जिन तथा ब्रह्मा विष्णु का सर्व दिशा में मुख कर सकते हैं, चामुण्डा, ग्रहमातृगण, कुबेर, गणेश, और भैरव का दक्षिणमुख और हनुमान जी का नैऋत्य मुख रहना शुभ है ॥ १८ ॥

प्रतिष्ठादोषमाह—

हन्त्यर्थहीनाः कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् ।

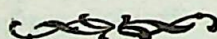
श्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥ १९ ॥

भा० टी०—द्रव्यहीन प्रतिष्ठा यजमान का, मन्त्रहीन प्रतिष्ठा ऋत्विज का, लक्षण हीन प्रतिष्ठा लक्ष्मी का नाश करती है । इससे प्रतिष्ठा के समान कोई शत्रु नहीं है ॥ १९ ॥

इति श्रीज्योतिषीन्द्रमुकुटमणिभोक्त्रधरसूरिसुनुदैवज्ञभूषणमातृप्रसादपाण्डेय-

कृतायां सोदाहरणान्वितायां वास्तुसारण्यां प्रतिष्ठाप्रकरणम् ॥ ६ ॥

\* इति \*





मुख्यपि०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०
क्षेपकाः	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८
सिद्धिपिंडाः	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८	३३८
विस्तारहस्ताः	८	१७	१७	११	११	११	११	११	११	११
दीर्घहस्ताः	२५	२३	२०	२५	२३	२५	२३	२५	२३	२५
अंगुलानि यवाः	३	५	३	१	१	५	५	३	७	३
आग्राः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वाराः	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२
अंशः	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
धनम्	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋणानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्रम्	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तिथयः	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१३
योगः	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
आर्युपि	१३	०६	७७	३३	१३	७७	३३	१३	७७	३३

[illegible]



[illegible][illegible]



सिद्धिपिण्डाद् विस्तारदीर्घहस्तादिकमायादिकञ्च ।

मुख्यपिण्डः	१२४	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३५	१३६	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	१४३	१४४	१४५	१४६	१४७	१४८	१४९	१५०	१५१	१५२	१५३	१५४	१५५	१५६	१५७	१५८	१५९	१६०	१६१	१६२	१६३	१६४	१६५	१६६	१६७	१६८	१६९	१७०	१७१	१७२	१७३	१७४	१७५	१७६	१७७	१७८	१७९	१८०	१८१	१८२	१८३	१८४	१८५	१८६	१८७	१८८	१८९	१९०	१९१	१९२	१९३	१९४	१९५	१९६	१९७	१९८	१९९	२००	२०१	२०२	२०३	२०४	२०५	२०६	२०७	२०८	२०९	२१०	२११	२१२	२१३	२१४	२१५	२१६	२१७	२१८	२१९	२२०	२२१	२२२	२२३	२२४	२२५	२२६	२२७	२२८	२२९	२३०	२३१	२३२	२३३	२३४	२३५	२३६	२३७	२३८	२३९	२४०	२४१	२४२	२४३	२४४	२४५	२४६	२४७	२४८	२४९	२५०	२५१	२५२	२५३	२५४	२५५	२५६	२५७	२५८	२५९	२६०	२६१	२६२	२६३	२६४	२६५	२६६	२६७	२६८	२६९	२७०	२७१	२७२	२७३	२७४	२७५	२७६	२७७	२७८	२७९	२८०	२८१	२८२	२८३	२८४	२८५	२८६	२८७	२८८	२८९	२९०	२९१	२९२	२९३	२९४	२९५	२९६	२९७	२९८	२९९	३००	३०१	३०२	३०३	३०४	३०५	३०६	३०७	३०८	३०९	३१०	३११	३१२	३१३	३१४	३१५	३१६	३१७	३१८	३१९	३२०	३२१	३२२	३२३	३२४	३२५	३२६	३२७	३२८	३२९	३३०	३३१	३३२	३३३	३३४	३३५	३३६	३३७	३३८	३३९	३४०	३४१	३४२	३४३	३४४	३४५	३४६	३४७	३४८	३४९	३५०	३५१	३५२	३५३	३५४	३५५	३५६	३५७	३५८	३५९	३६०	३६१	३६२	३६३	३६४	३६५	३६६	३६७	३६८	३६९	३७०	३७१	३७२	३७३	३७४	३७५	३७६	३७७	३७८	३७९	३८०	३८१	३८२	३८३	३८४	३८५	३८६	३८७	३८८	३८९	३९०	३९१	३९२	३९३	३९४	३९५	३९६	३९७	३९८	३९९	४००	४०१	४०२	४०३	४०४	४०५	४०६	४०७	४०८	४०९	४१०	४११	४१२	४१३	४१४	४१५	४१६	४१७	४१८	४१९	४२०	४२१	४२२	४२३	४२४	४२५	४२६	४२७	४२८	४२९	४३०	४३१	४३२	४३३	४३४	४३५	४३६	४३७	४३८	४३९	४४०	४४१	४४२	४४३	४४४	४४५	४४६	४४७	४४८	४४९	४५०	४५१	४५२	४५३	४५४	४५५	४५६	४५७	४५८	४५९	४६०	४६१	४६२	४६३	४६४	४६५	४६६	४६७	४६८	४६९	४७०	४७१	४७२	४७३	४७४	४७५	४७६	४७७	४७८	४७९	४८०	४८१	४८२	४८३	४८४	४८५	४८६	४८७	४८८	४८९	४९०	४९१	४९२	४९३	४
-------------	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	---

[illegible]



मुख्यपिं०	१२	२०	३३	५३	७८	१०९	१४६	१८९	२३९	२९६	३६०	४३२	५१३	६०३	७०३
क्षेपकाः	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२	३५२
सिद्धिपिंडाः	६५२	३५२	५३६	१३६	२६८	४३२	६५२	८७६	१०९०	१३०४	१५१८	१७३२	१९४६	२१६०	२३७४
विस्तारह०	६	११	९	६	१६	२३	२१	२१	२३	२७	३५	४५	५५	६५	७५
दीर्घहस्ताः अंगुलानि यवाः	२८ १३ ३	३८ २ १	४० ३ ३	३४ १ ८	२४ २ ५	२७ १ ०	२७ २ २	२५ २ ७	२५ २ ८	२१ २ ९	२१ २ ५	२५ २ ८	२५ २ ८	२५ २ ०	२५ २ ५
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५
वाराः	३	५	२	६	१	३	७	४	६	१	५	२	४	६	७
अंशः	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
धनम्	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋणानि नक्षत्रम्	३ ४	१ ४	७ ४	५ ४	३ ४	१ ४	७ ४	५ ४	३ ४	१ ४	७ ४	५ ४	३ ४	१ ४	७ ४
तिथयः	१	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	७	१०	१	७
योगः	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आर्यषि	२३७	२३७	०८६	७७	२३७	०८६	७७	३३६	२३७	२३७	०८६	२३७	०८६	२३७	२३७

मुख्यपि०	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
क्षेपकाः	१००१	१००२	१००३	१००४	१००५	१००६	१००७	१००८	१००९	१०१०	१०११	१०१२	१०१३	१०१४	१०१५	१०१६	१०१७
सिद्धिपिडा:	१२४१	१२४२	१२४३	१२४४	१२४५	१२४६	१२४७	१२४८	१२४९	१२५०	१२५१	१२५२	१२५३	१२५४	१२५५	१२५६	१२५७
विस्तारह०	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
दीर्घहस्ताः	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४
अंगुलानि यथाः	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयाः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
वाराः	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
अंशः	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
धनम्	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
श्रृणानि	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
नक्षत्रम्	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
तिथयः	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
योगः	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
आर्यधि	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३







[illegible][illegible]



मुख्यपिंडाः	१२८	३१८	५३८	७५८	९७८	११९८	१४१८	१६३८	१८५८	२०७८	२२९८	२५१८	२७३८	२९५८	३१७८	३३९८	३६१८	३८३८	४०५८	४२७८	४४९८	४७१८	४९३८	५१५८	५३७८	५५९८	५८१८	६०३८	६२५८	६४७८	६६९८	६९१८	७१३८	७३५८	७५७८	७७९८	८०१८	८२३८	८४५८	८६७८	८८९८	९११८	९३३८	९५५८	९७७८	९९९८	१०२१८	१०४३८	१०६५८	१०८७८	११०९८	११३१८	११५३८	११७५८	११९७८	१२१९८	१२४१८	१२६३८	१२८५८	१३०७८	१३२९८	१३५१८	१३७३८	१३९५८	१४१७८	१४३९८	१४६१८	१४८३८	१५०५८	१५२७८	१५४९८	१५७१८	१५९३८	१६१५८	१६३७८	१६५९८	१६८१८	१७०३८	१७२५८	१७४७८	१७६९८	१७९१८	१८१३८	१८३५८	१८५७८	१८७९८	१९०१८	१९२३८	१९४५८	१९६७८	१९८९८	२०११८	२०३३८	२०५५८	२०७७८	२०९९८	२१२१८	२१४३८	२१६५८	२१८७८	२२०९८	२२३१८	२२५३८	२२७५८	२२९७८	२३१९८	२३४१८	२३६३८	२३८५८	२४०७८	२४२९८	२४५१८	२४७३८	२४९५८	२५१७८	२५३९८	२५६१८	२५८३८	२६०५८	२६२७८	२६४९८	२६७१८	२६९३८	२७१५८	२७३७८	२७५९८	२७८१८	२८०३८	२८२५८	२८४७८	२८६९८	२८९१८	२९१३८	२९३५८	२९५७८	२९७९८	२९९९८	३०२१८	३०४३८	३०६५८	३०८७८	३१०९८	३१३१८	३१५३८	३१७५८	३१९७८	३२१९८	३२४१८	३२६३८	३२८५८	३३०७८	३३२९८	३३५१८	३३७३८	३३९५८	३४१७८	३४३९८	३४६१८	३४८३८	३५०५८	३५२७८	३५४९८	३५७१८	३५९३८	३६१५८	३६३७८	३६५९८	३६८१८	३७०३८	३७२५८	३७४७८	३७६९८	३७९१८	३८१३८	३८३५८	३८५७८	३८७९८	३९०१८	३९२३८	३९४५८	३९६७८	३९८९८	४०११८	४०३३८	४०५५८	४०७७८	४०९९८	४१२१८	४१४३८	४१६५८	४१८७८	४२०९८	४२३१८	४२५३८	४२७५८	४२९७८	४३१९८	४३४१८	४३६३८	४३८५८	४४०७८	४४२९८	४४५१८	४४७३८	४४९५८	४५१७८	४५३९८	४५६१८	४५८३८	४६०५८	४६२७८	४६४९८	४६७१८	४६९३८	४७१५८	४७३७८	४७५९८	४७८१८	४८०३८	४८२५८	४८४७८	४८६९८	४८९१८	४९१३८	४९३५८	४९५७८	४९७९८	४९९९८	५०२१८	५०४३८	५०६५८	५०८७८	५१०९८	५१३१८	५१५३८	५१७५८	५१९७८	५२१९८	५२४१८	५२६३८	५२८५८	५३०७८	५३२९८	५३५१८	५३७३८	५३९५८	५४१७८	५४३९८	५४६१८	५४८३८	५५०५८	५५२७८	५५४९८	५५७१८	५५९३८	५६१५८	५६३७८	५६५९८	५६८१८	५७०३८	५७२५८	५७४७८	५७६९८	५७९१८	५८१३८	५८३५८	५८५७८	५८७९८	५९०१८	५९२३८	५९४५८	५९६७८	५९८९८	६०११८	६०३३८	६०५५८	६०७७८	६०९९८	६१
-------------	-----	-----	-----	-----	-----	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	----

[illegible]







[illegible][illegible]







मुख्यपि०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
क्षेपकाः	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३५	१३६	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	१४३	१४४
सिद्धिपिंडाः	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३५	१३६	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	१४३	१४४
विस्तारह०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
दीर्घहस्ताः अंगुलानि यवाः	२८ १८ ५	३६ २५ ३	३९ १८ ४	३२ १८ ५	२४ १८ २	२६ २१ ७	२६ २१ ६	२४ २१ ०	२६ २१ २	३३ २६ ५	३३ २६ ६	३१ २६ ५	२६ २२ ७	३३ २२ २	३६ २६ ६	३४ २६ १	३४ २२ २	३४ २६ २	३४ २२ २	३४ २२ २
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वाराः	६	१	५	२	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२	६	३	७	२	६	३
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
धनम्	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋणानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	८
नक्षत्रम्	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
तिथयः	८	१४	२	५	११	२	५	८	१४	५	८	११	२	५	८	११	२	५	११	१४
योगः	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
आयूषि	८	१०	१२	०	३	१५	१५	०	८	१०	१०	८	१०	१०	८	१०	१०	८	१०	१०

मुख्यपि०	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०
सिद्धिपिंडाः	१०२४	१०२५	१०२६	१०२७	१०२८	१०२९	१०३०	१०३१	१०३२	१०३३	१०३४	१०३५	१०३६
क्षेपकाः	१०२४	१०२५	१०२६	१०२७	१०२८	१०२९	१०३०	१०३१	१०३२	१०३३	१०३४	१०३५	१०३६
विस्तारह०	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८
दीर्घहस्ताः	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०
अंगुलानि	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
यवाः	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
आयाः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
वाराः	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
अंशः	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धनम्	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मृणालि	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
नक्षत्रम्	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
तिथयः	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
योगः	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
आयुर्वि	०७	०८	०९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९



[illegible][illegible]



[illegible][illegible]



मुख्यपि०	क्षेपकाः	सिद्धिपिंडाः	विस्तारहस्ताः	दीर्घहस्ताः	अंगुलानि	यवाः	आयाः	वाराः	अंशः	धनम्	ऋणानि	नक्षत्रम्	तिथयः	योगः	आयूषि
३३	३१३	३१३	३	२६	१०	५	१	५	६	८	३	१४	५	७	०७
३४	३१४	३१४	११	३८	१६	५	३	७	६	८	१	१४	११	७	३५
३५	३१५	३१५	२	४१	८	७	५	४	६	८	७	१४	१४	७	३५
३६	३१६	३१६	९	३५	८	७	७	१	६	८	५	१४	२	७	३५
३७	३१७	३१७	६	२५	७	५	२	३	६	८	३	१४	८	७	३५
३८	३१८	३१८	३३	२७	२२	७	३	५	६	८	१	१४	१४	७	३५
३९	३१९	३१९	२२	२८	१	१	५	७	६	८	७	१४	२	७	३५
४०	३२०	३२०	२२	२५	२५	७	७	१	६	८	५	१४	१४	७	३५
४१	३२१	३२१	२३	२७	७	२	३	३	६	८	३	१४	१४	७	३५
४२	३२२	३२२	२२	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४३	३२३	३२३	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	३	१४	१४	७	३५
४४	३२४	३२४	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४५	३२५	३२५	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४६	३२६	३२६	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४७	३२७	३२७	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४८	३२८	३२८	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४९	३२९	३२९	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
५०	३३०	३३०	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५

मुख्यपि०	क्षेपकाः	सिद्धिपिण्डाः	विस्तारहस्ताः	दीर्घहस्ताः	अंगुलानि	यवाः	आयाः	वाराः	अंशः	धनम्	ऋणानि	नक्षत्रम्	तिथयः	योगः	आयूषि
३३	३१३	३१३	३	२६	१०	५	१	५	६	८	३	१४	५	७	०७
३४	३१४	३१४	११	३८	१६	५	३	७	६	८	१	१४	११	७	३५
३५	३१५	३१५	२	४१	८	७	५	४	६	८	७	१४	१४	७	३५
३६	३१६	३१६	९	३५	८	७	७	१	६	८	५	१४	२	७	३५
३७	३१७	३१७	६	२५	७	५	२	३	६	८	३	१४	८	७	३५
३८	३१८	३१८	३३	२७	२२	७	३	५	६	८	१	१४	१४	७	३५
३९	३१९	३१९	२२	२८	१	१	५	७	६	८	७	१४	२	७	३५
४०	३२०	३२०	२२	२५	२५	७	७	१	६	८	५	१४	१४	७	३५
४१	३२१	३२१	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	३	१४	१४	७	३५
४२	३२२	३२२	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४३	३२३	३२३	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४४	३२४	३२४	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४५	३२५	३२५	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४६	३२६	३२६	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४७	३२७	३२७	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४८	३२८	३२८	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
४९	३२९	३२९	२३	२७	१६	७	३	३	६	८	५	१४	१४	७	३५
५०	३३०	३३०	२३	२७	१६	७	५	३	६	८	५	१४	१४	७	३५



[illegible]

मुख्यपि०	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०
क्षेपकाः	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०
सिद्धिपिंडाः	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०
विस्तारह०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९
दीर्घरम्भाः	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९
अंगुलानि यवाः	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
आयाः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
चाराः	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
अंशः	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
धनम्	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
ऋणानि	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
नक्षत्रम्	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३
तिथयः	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
योगः	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९
श्राव्यं वि	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६



मुख्यपिएडाः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
क्षेष्काः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
सिद्धिपिएडाः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
विस्तारहस्ताः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
वीर्यहन्ताः अंगुलानि यवाः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
आयाः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
वाराः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
अंशः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
घनम्	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
अष्टगानि	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
नक्षत्रम्	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
तिथयः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
योगः	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
आर्यपि	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०

मुख्यपिण्डः	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
क्षेपकाः	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
सिद्धिपिण्डाः	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
विस्तारहस्ताः	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
दीर्घहस्ताः अंगुलानि यवाः	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
आयाः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
वाराः	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२
श्रंशः	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
धनम्	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
ऋणानि	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
नक्षत्रम्	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३
तिथयः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
योगः	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
आयुषि	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०



मुख्यपिंडाः	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००		
क्षेपकाः	२२६	२२७	२२८	२२९	२३०	२३१	२३२	२३३	२३४	२३५	२३६	२३७	२३८	२३९	२४०	२४१	२४२	२४३	२४४	२४५	२४६	२४७	२४८	२४९	२५०	२५१	२५२	२५३	२५४	२५५	२५६	२५७	२५८	२५९		
सिद्धिपिंडाः	२८८	२८९	२९०	२९१	२९२	२९३	२९४	२९५	२९६	२९७	२९८	२९९	३००	३०१	३०२	३०३	३०४	३०५	३०६	३०७	३०८	३०९	३१०	३११	३१२	३१३	३१४	३१५	३१६	३१७	३१८	३१९	३२०	३२१		
विस्तारहस्ताः	६	६	११	६	२१	२६	३१	३६	४१	४६	५१	५६	६१	६६	७१	७६	८१	८६	९१	९६	१०१	१०६	१११	११६	१२१	१२६	१३१	१३६	१४१	१४६	१५१	१५६	१६१	१६६		
दीर्घहस्ताः अंगुला ने यवाः	३२	२८	३६	३८	२८	२४	२०	१६	१२	८	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		
आयाः	१	३	५	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	२९	३१	३३	३५	३७	३९	४१	४३	४५	४७	४९	५१	५३	५५	५७	५९	६१	६३	६५	६७		
वाराः	४	१	७	७	२	६	१	५	१	५	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४	०	४		
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६		
धनम्	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	
ऋणानि	३	२	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	
नक्षत्रम्	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	
तिथियः	२	५	१२	१४	५	८	१४	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	
योगः	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	
आयुषि	२६	०१	२६	००	०१	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२	०२	२६	२

[illegible]



मुख्यपि०	३	१६	२७	३८	४९	५०	६१	७२	८३	९४	१०५	११६	१२७	१३८	१४९	१६०	१७१	१८२	१९३
क्षेपकाः	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८	३१८
सिद्धिपिंडाः	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८	५८८
विस्तारहं०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
दीर्घहस्ताः अंगुलानि यवाः	२५ ० ०	४३ ० ०	३७ ० ०	३१ ० ०	४० १	२५ २	२६ ३	२३ ३	२८ ४	२८ ५	२८ ६	२८ ७	२८ ८	२८ ९	२८ १०	२८ ११	२८ १२	२८ १३	२८ १४
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५
वाराः	२	४	१	५	७	२	६	३	५	७	३	५	७	३	५	७	३	५	७
अंशः	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
धनम्	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
मृग्यानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७
नक्षत्रम्	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
तिथयः	१५	१	८	१२	३	८	१२	१५	८	१२	१५	३	८	१२	१५	३	८	१२	१५
योगः	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आर्यषि	०८४	३३	४८	२७	२८	४८	४८	०८४	३३	४८	२७	२८	४८	४८	०८४	३३	४८	२७	२८

[illegible]







मुख्यपि०	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०
क्षेपकाः	३२१	३२१	३२२	३२२	३२३	३२३	३२४	३२४	३२५	३२५	३२६	३२६	३२७	३२७	३२८	३२८	३२९	३२९
सिद्धिपिंडाः	३३३	३३३	३३४	३३४	३३५	३३५	३३६	३३६	३३७	३३७	३३८	३३८	३३९	३३९	३४०	३४०	३४१	३४१
विस्तारहस्ताः	१५	१५	१६	१६	१७	१७	१८	१८	१९	१९	२०	२०	२१	२१	२२	२२	२३	२३
दीर्घहस्ताः	२०	२०	२१	२१	२२	२२	२३	२३	२४	२४	२५	२५	२६	२६	२७	२७	२८	२८
अंगुलानि	२०	२०	२१	२१	२२	२२	२३	२३	२४	२४	२५	२५	२६	२६	२७	२७	२८	२८
यवाः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वाराः	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	५	२	४	१	३	७
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
धनम्	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋणानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्रम्	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथयः	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८	१४	५	८	१४	२	८	११	२
योगः	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
आयुषि	२०१	२२५	७	३५	२६	७७	३५	२०१	७७	७	२०१	२२५	७	३५	२६	७७	३५	२०१

मुख्यपि०	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०
क्षेपकाः	३२१	३२१	३२२	३२२	३२३	३२३	३२४	३२४	३२५	३२५	३२६	३२६	३२७	३२७	३२८	३२८	३२९	३२९
सिद्धिपिंडाः	३३३	३३३	३३४	३३४	३३५	३३५	३३६	३३६	३३७	३३७	३३८	३३८	३३९	३३९	३४०	३४०	३४१	३४१
विस्तारहस्ताः	३१	२६	३१	३१	३३	३३	३३	३३	३४	३४	३५	३५	३६	३६	३७	३७	३८	३८
दीर्घहस्ताः	३७	३८	४१	३६	४२	४०	४५	४३	४८	४६	४८	४८	४९	४९	५०	५०	५१	५१
अंगुलानि	३३	३७	४०	३७	४५	४३	४८	४६	४८	४८	४९	४९	५०	५०	५१	५१	५२	५२
यवाः	२	३	७	०	१	७	५	३	२	३	२	३	३	३	३	३	३	३
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वाराः	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
धनम्	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋणानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्रम्	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथयः	११	१४	५	८	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८	१४	२	८	११
योगः	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
आयुषि	२०१	२०१	७७	७	२०१	२२५	७	२०१	२२५	७	२०१	२२५	७	२०१	२२५	७	२०१	२२५



[illegible][illegible]



[illegible][illegible]



[illegible][illegible]



मुख्यपिण्डः	६५	७५	८५	९५	१०५	११५	१२५	१३५	१४५	१५५	१६५	१७५	१८५	१९५	२०५	२१५	२२५	२३५	२४५	२५५	२६५	२७५	२८५	२९५	३०५	३१५	३२५	३३५	३४५	३५५	३६५	३७५	३८५	३९५	४०५
क्षेपकाः	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	२१६	
सिद्धिपिण्डः	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	६६२	
विस्तारहस्ताः	६	६	११	६	१६	१६	२१	२१	२६	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	२५	२२	
दीर्घज्ञानाः	३०	२४	३४	३०	२५	२२	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	२८	२५	
अंगुलानि	८	८	१५	८	१७	२१	१०	१०	८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	
यवाः	०	०	६	०	५	४	२	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	
वाराः	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	४	१	३	७	२	४	१	३	७	२	४	१	३	७	२	४	१	३	७	२	४	१	३	
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	
घनम्	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	
ऋणानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	
नक्षत्रम्	२४	२४	४२	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	
तिथयः	६	१२	३	६	१२	५	६	६	१५	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	६	१२	३	
योगः	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	
आर्यपि	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	

[illegible]



मुख्यपिण्डः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
क्षेपकाः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
सिद्धिपिण्डाः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
विस्तारहस्ताः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
दीर्घहस्ताः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
अंगुलानि यवाः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
आयाः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
ऊचाराः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
अंशः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
धनम्	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
ऋणानि	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
नक्षत्रम्	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
तिथयः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
योगाः	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
आयुं पि	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०

मुख्यपिंडाः		३७२१	०७०६	३०८
क्षेपकाः		५६२१	०७०६	५५४
सिद्धिपिण्डाः		१७२१	०७०६	१०८
विस्तारहस्ताः		३१	३१	३१
दीर्घहस्ताः		३१	३१	३१
अंगुलानि यवाः		३१	३१	३१
आयाः		१	३	५
वाराः		२	६	३
अंशः		३	३	३
धनम्		४	४	४
ऋणानि		३	१	७
नक्षत्रम्		२५	२५	२५
तिथयः		७	१०	१३
योगः		२६	२६	२६
आयूषि		२६	२६	२६



मुख्यपिंडा:	१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०२१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०४१४२४३४४४५४६४७४८४९५०५१५२५३५४५५५६५७५८५९६०६१६२६३६४६५६६६७६८६९७०७१७२७३७४७५७६७७७८७९८०८१८२८३८४८५८६८७८८८९९०९१९२९३९४९५९६९७९८९९१००१०१०२१०३१०४१०५१०६१०७१०८१०९११०१११११२११३११४११५११६११७११८११९१२०१२११२२१२३१२४१२५१२६१२७१२८१२९१३०१३१३२१३३१३४१३५१३६१३७१३८१३९१४०१४१४२१४३१४४१४५१४६१४७१४८१४९१५०१५१५२१५३१५४१५५१५६१५७१५८१५९१६०१६१६२१६३१६४१६५१६६१६७१६८१६९१७०१७१७२१७३१७४१७५१७६१७७१७८१७९१८०१८१८२१८३१८४१८५१८६१८७१८८१८९१९०१९१९२१९३१९४१९५१९६१९७१९८१९९२००२०१२०२२०३२०४२०५२०६२०७२०८२०९२१०२११२१२२२१३२१४२१५२१६२१७२१८२१९२२०२२१२२२२३२२४२२५२२६२२७२२८२२९२३०२३१२३२२३३२३४२३५२३६२३७२३८२३९२४०२४१२४२२४३२४४२४५२४६२४७२४८२४९२५०२५१२५२२५३२५४२५५२५६२५७२५८२५९२६०२६१२६२२६३२६४२६५२६६२६७२६८२६९२७०२७१२७२२७३२७४२७५२७६२७७२७८२७९२८०२८१२८२२८३२८४२८५२८६२८७२८८२८९२९०२९१२९२२९३२९४२९५२९६२९७२९८२९९३०३०१३०२३०३३०४३०५३०६३०७३०८३०९३१०३११३१२३१३३१४३१५३१६३१७३१८३१९३२०३२१३२२३२३३२४३२५३२६३२७३२८३२९३३०३३१३३२३३३३३४३३५३३६३३७३३८३३९३४०३४१३४२३४३३४४३४५३४६३४७३४८३४९३५०३५१३५२३५३३५४३५५३५६३५७३५८३५९३६०३६१३६२३६३३६४३६५३६६३६७३६८३६९३७०३७१३७२३७३३७४३७५३७६३७७३७८३७९३८०३८१३८२३८३३८४३८५३८६३८७३८८३८९३९०३९१३९२३९३३९४३९५३९६३९७३९८३९९४०४०१४०२४०३४०४४०५४०६४०७४०८४०९४१०४११४१२४१३४१४४१५४१६४१७४१८४१९४२०४२१४२२४२३४२४४२५४२६४२७४२८४२९४३०४३१४३२४३३४३४४३४५४३६४३७४३८४३९४४०४४१४४२४४३४४४४४४५४४६४४७४४८४४९४५०४५१४५२४५३४५४४५५४५६४५७४५८४५९४६०४६१४६२४६३४६४४६५४६६४६७४६८४६९४७०४७१४७२४७३४७४४७५४७६४७७४७८४७९४८०४८१४८२४८३४८४४८५४८६४८७४८८४८९४९०४९१४९२४९३४९४४९५४९६४९७४९८४९९५०५०१५०२५०३५०४५०५५०६५०७५०८५०९५१०५११५१२५१३५१४५१५५१६५१७५१८५१९५२०५२१५२२५२३५२४५२५५२६५२७५२८५२९५३०५३१५३२५३३५३४५३५५३६५३७५३८५३९५४०५४१५४२५४३५४४५४५५४६५४७५४८५४९५५०५५१५५२५५३५५४५५५५५६५५७५५८५५९५६०५६१५६२५६३५६४५६५५६६५६७५६८५६९५७०५७१५७२५७३५७४५७५५७६५७७५७८५७९५८०५८१५८२५८३५८४५८५५८६५८७५८८५८९५९०५९१५९२५९३५९४५९५५९६५९७५९८५९९६०६०१६०२६०३६०४६०५६०६६०७६०८६०९६१०६११६१२६१३६१४६१५६१६६१७६१८६१९६२०६२१६२२६२३६२४६२५६२६६२७६२८६२९६३०६३१६३२६३३६३४६३५६३६६३७६३८६३९६४०६४१६४२६४३६४४६४५६४६६४७६४८६४९६५०६५१६५२६५३६५४६५५६५६६५७६५८६५९६६०६६१६६२६६३६६४६६५६६६६६७६६८६६९६७०६७१६७२६७३६७४६७५६७६६७७६७८६७९६८०६८१६८२६८३६८४६८५६८६६८७६८८६८९६९०६९१६९२६९३६९४६९५६९६६९७६९८६९९७०७०१७०२७०३७०४७०५७०६७०७७०८७०९७१०७११७१२७१३७१४७१५७१६७१७७१८७१
-------------	---

[illegible]



मुख्यपिंडाः	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																			
क्षेपकाः	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																			
सिद्धिपिंडाः	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०	१२१	१२२	१२३	१२४	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३५	१३६	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	१४३	१४४	१४५	१४६	१४७	१४८	१४९	१५०	१५१	१५२	१५३	१५४	१५५	१५६	१५७	१५८	१५९	१६०	१६१	१६२	१६३	१६४	१६५	१६६	१६७	१६८	१६९	१७०	१७१	१७२	१७३	१७४	१७५	१७६	१७७	१७८	१७९	१८०	१८१	१८२	१८३	१८४	१८५	१८६	१८७	१८८	१८९	१९०	१९१	१९२	१९३	१९४	१९५	१९६	१९७	१९८	१९९	२००																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																					
विस्तारहस्ताः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																			
दीर्घहस्ताः	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																																			
अंगुलानि	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मुख्यपिंडाः	१७	६८	३७	५४	१७	६८	३७	५४	१७	६८	३७	५४
क्षेपकाः	१३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९	१३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९	१३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९
सिद्धिपिंडाः	३३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९	१३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९	१३२१०७०९	६०१०७०९	३३२१०७०९	५४२१०७०९
विस्तारहस्ताः	३३	२५	३३	२५	३३	२५	३३	२५	३३	२५	३३	२५
दीर्घहस्ताः	३७	२८	३७	२८	३७	२८	३७	२८	३७	२८	३७	२८
अंगुलानि यवाः	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
आयाः	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वाराः	४	२	५	१	३	७	२	१	३	७	२	१
अंशः	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
धनम्	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
मृणालानि	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्रम्	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
तिथयः	३	६	१२	१५	३	६	१२	१५	३	६	१२	१५
योगः	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
आर्याणि	७६	३३	२६	३३	७६	३३	२६	३३	७६	३३	२६	३३



## स्तो ० पण्डितश्रीवायुनन्दनमिश्रग्रन्थरत्नानि

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा

भा० टी० ३)

विवाहपद्धतिः भा० टी० ६)

उपनयनपद्धतिः " ६)

विष्णुयागपद्धतिः मूल-

मात्रम् २०)

रुद्रयागपद्धतिः मूल २५)

शिलान्यास-देहली-

न्यासपद्धतिः भा० टी० ४)

वाशिष्ठीहवनपद्धतिः

भा० टी० ६)

कुण्डमण्डपसिद्धिः

भा० टी० ४)

पञ्चाङ्गपूजन-पद्धतिः

मूल-मात्रम् ५)

नारायणबलिप्रयोगः

भा० टी० ८)

श्रावणीप्रयोगः— १०)

प्रतिष्ठामहोदधिः— ६०)

मूलशान्तिपद्धतिः

भा० टी० ६)

पंचदानपद्धतिः

भा० टी० ५)

दुर्गोत्पत्तशती-सजिल्द

मूल-मात्रम् १०)

एकोद्दिष्टश्राद्ध पद्धतिः

भा० टी० ३)

ग्रहप्रयोगः अर्थात्

ग्रहशान्तिप्रयोगः २५)

प्रेतमञ्जरी-भा० टी० १५)

श्राद्धसंग्रहः अर्थात्

श्राद्धविवेकः भा० टी० ५०)

वास्तुशान्तिपद्धतिः ५)

वनदुर्गा पटल ५)

गृहरत्नभूषण अर्थात्

वास्तुप्रबन्धः ६)

ललितासहस्रनाम् स्तोत्रम्

अर्थात् सौभाग्यपंचक

स्तोत्रम् १०)

जन्मपत्र व्यवस्था

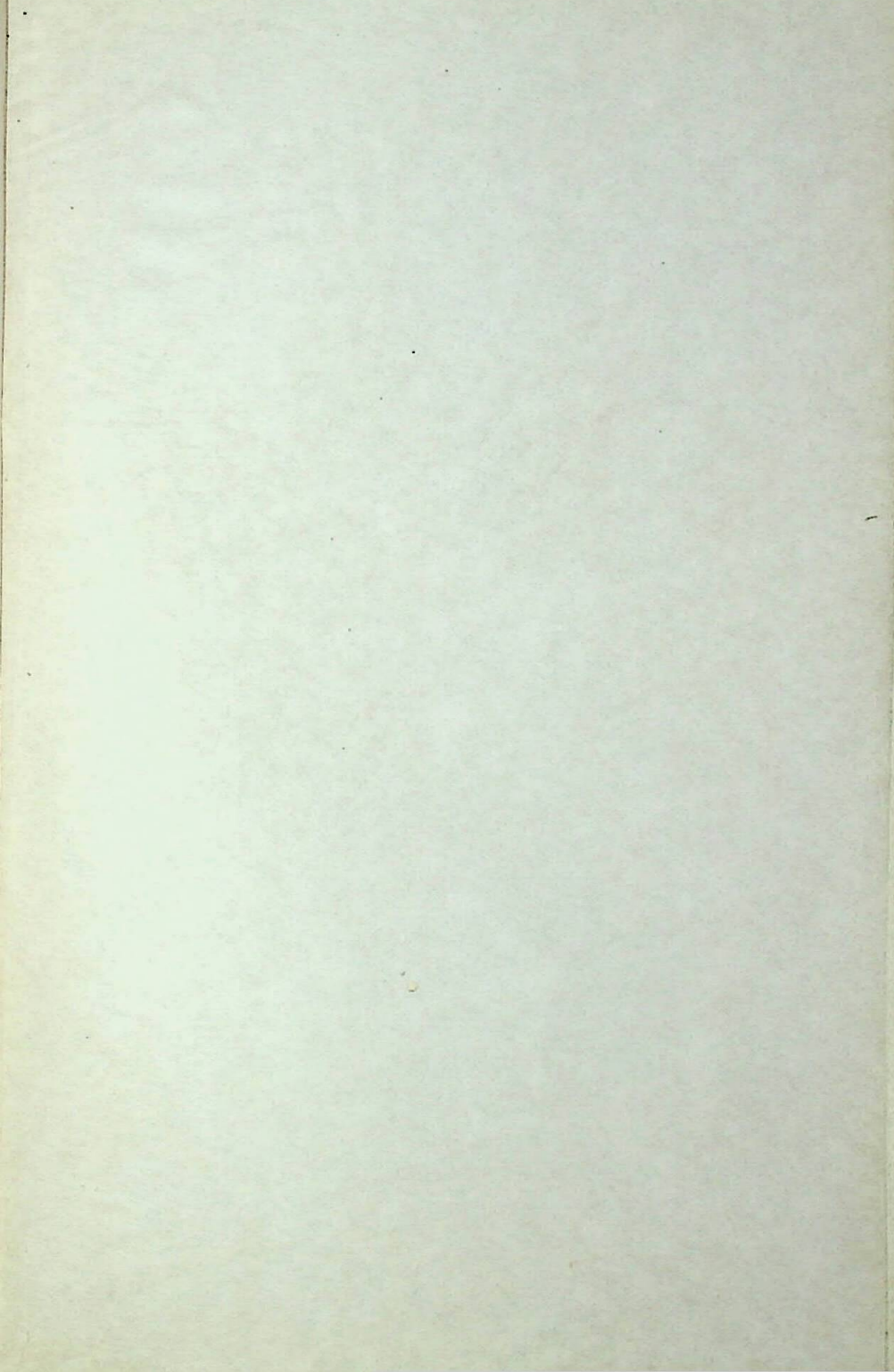
भा० टी० ६)

● पुस्तक-प्राप्ति-स्थानम् ●

**मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद**

संस्कृत-पुस्तकालय, कचोड़ीगली, वाराणसी-१



















---

पुस्तक प्राप्ति स्थान :  
मास्टर खेलाड़ीलाल संकटा प्रसाद  
कचौड़ीगली, वाराणसी-१

---